श्री दुर्गा सप्तशती

श्री दुर्गा सप्तशती भाषा टीका

जिसमें

दुर्गा आरती, देवी-कवच अर्गला स्तोत्र,कीलक स्तोत्र,रात्रिसूक्त,सप्तशती न्यास, नवार्ण मन्त्र जप विधि, कुञ्जिका स्तोत्र देवीसूक्त अपराध क्षमापन स्तोत्र काम्यप्रयोग, श्री विंध्येश्वरी स्तोत्र, आदि प्रत्येक उपयोगी सामग्री दी गई हैं।

टीकाकार–स्व० पं० परमानन्द शास्त्री

प्रकाशक–

उदित प्रकाशन, मथुरा।

स्पेशल संस्करण

मुद्रकः—गोवर्द्धन प्रेस, काजी पाड़ा,मथुरा।

मूल्य
सादा जिल्द १०)
कपड़ा जिल्द १२)
मखमल जिल्द १६)

विषय-सूची

* आरती श्री दुर्गाजी की *

जय अम्बे गौरी मैया जय अम्बे गौरी ॥ मैया जय मंगल करणी मैया जय आनन्द करणी ॥ तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिवजी ॥ जय अम्बे० ॥ माँग सिन्दूर विराजत टीकौ मृगमद कौ । मैया टीकौ मृगमद कौ ॥ उज्ज्वल से दोउ नैना चन्द्र बदन नीकौ ॥ जय अम्बे गौरी ॥२॥ कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजै ॥ मैया रक्ता० ॥ रक्तपुष्प गल माला कण्ठन पर साजै ॥ जय० ॥३॥ केहरि वाहन राजत खंग खप्परधारी । ॥मैया खंग०॥ सुर नर मुनिजन सेवत तिनके दुःख हारी ॥ जय अम्बे० ॥४॥ कानन कुण्डल शोभित नासाग्रे मोती ॥ मैया नासा० ॥ कोटिक चन्द्र दिवाकर राजत सम जोती ॥ जय अम्बे० ॥ ५ ॥ शुम्भ निशुम्भ विदारे महिषासुर घाती ॥ मैया० ॥ धूम्र बिलोचन नयना निशिदिन मदमाती ॥ जय अम्बे० ॥ ६ ॥ चण्ड मुण्ड दोउ मारे शोणित बीज हरे ॥ मैया शोणित० ॥ मधु-कैटभ संहारे सुर भयहीन करे ॥ जय अम्बे० ॥ ७ ॥ ब्रह्माणी रुद्राणी तुम

कमला रानी ॥ मैया तुम० ॥ आगम निगम बखानी तुम शिव पटरानी ॥ जय अम्बे० ॥ ८ ॥ चौंसठ योगिन गावत नृत्य करत भैरों ॥ मैया नृत्य०॥ बाजत ताल मृदंग और डमरू गहरौ ॥ जय अम्बे० ॥९॥ तुमही जन की माता तुमही हो भरता ॥मैया तुम०॥ भक्तन की दुःख हरता सुख सम्पति करता ॥ जय अम्बे० । १०॥ भुजा चार अति शोभित वर मुद्रा धारी ॥ मैया वर० ॥ मनवांछित फल पावत सेवत नर नारी ॥ जय अम्बे० ॥११॥ कञ्चन थाल विराजत अगर कपूर की बाती ॥मैया अगर० ॥ श्रीभाल केतु में राजत कोटि रतन जोती ॥ जय अम्बे० ॥ १२॥ अम्बेजी की आरती जो कोई नर गावै ॥ मैया जो० ॥ कहत शिवानन्द स्वामी सुख सम्पति पावै ॥ जय अम्बे० ॥

—::*::—

शतचण्डी-सहस्रचण्डी यज्ञपूजन होम सामग्री

रोली, मोली, केसर, अबीर, गुलाल, मेंहदी पिसी सूखी, हल्दी पिसी, धूपबत्ती, बेलफल, सुपाड़ी, सर्वौषधि, सिंदूर, कपूर, जनेऊ जोड़ा, मेवा पाँचों, पंचरंग, नारियल, गोला, दाख, आँवले, अदरख, इलायची, लोंग, चन्दन का मूँठा, पञ्चरत्न, कमलगट्ठा, लाल चन्दन, गुग्गल, पान, फूल, फूलमाला, ऋतु का फल, केला, जायफल, मिश्री, पञ्चपल्लव, बन्दनवार, दूब, कुशा, अनार, पीली सरसों, ईख का गन्ना, दूध, दही, घी, शहद, बतासे, गोबर, गौमूत्र, पेड़ा, बरफी, गुड़, खील, ढाक के फूल, तिल, जौ, चावल, बूरा, खादी, लुंगी, धोती, दुपट्टा, चादर, साफी, तष्टा, अर्घा, पंचपात्र आचमनी, माला, गौमुखी, चँदोबा के लिये लाल कपड़ा, ध्वजा १०, पताका १०, घृत-पात्र, पूर्णपात्र, चरुस्थली, मूर्तिसुवर्ण की, सोने की सलाई, केला के खम्भा ४, बांस की चप्पल ४, मिट्टी पीली, ताँबे का तष्टा यन्त्र के लिए, प्रधान कलश ताँबे का, पुण्याह वाचन को लुटिया ताँबे की, रेशमी साड़ी, अँगिया रेशमी, चौकी १, पट्टी मण्डप का सामान, ईंटें, बाँस-बल्ली, कुल्ला, पत्तल, सकोरा, तेल, गेहूँ का आटा, रुद्र कलश १ नवग्रह, समिधा, सप्त-मृत्तिका, वर्णी ब्राह्मणों को पात्र, वस्त्र आदि ।

* दैनिक संकल्प *

हरि ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णु रद्येत्यादि० मम (यजमानस्य वा) सकल कामना सिद्ध्यर्थं मायुरारोग्यैश्चर्यांद्धपि वृद्ध्यर्थं व्यापारे स्थिरलक्ष्मी-प्राप्त्यर्थं राजद्वार (वा सर्वत्र) विजयार्थं श्रीमहाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती देवता प्रीत्यर्थं सर्वापत्तिनिवारणार्थं श्रीचण्डीसप्तशती पाठं करिष्ये। तत्रादौ कवचार्गला कीलक न्याय माद्यन्तयोर्नवार्णक मन्त्राष्टोत्तरशत संख्याकं जपपूर्वक क्रमेण रात्रिसूक्त देवी सूक्त पठनमन्ते रहस्य पठनम् च करिष्ये।

❀ अथ पाठ्यक्रमः ❀

रात्रिसूक्तं पठेपादौ मध्ये सप्तशतीस्तवम्। आन्ते तु पठनीयं वै देवीसूक्तमिति क्रमः॥
शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्र नवार्णकम्। चण्डी सप्तशती मध्ये सम्पुटोऽयमुदाहृतः॥
गीती शीघ्री शिरः कंपी तथा लिखित वाचकः। अनर्थज्ञोल्पकंठश्च षडैते पाठकाऽधमाः॥

सर्व प्रथम रात्रि सूक्त, मध्य में सप्तशती, अन्त में देवी सूक्त पढ़ना चाहिए। दुर्गा सप्तशती का पाठ इस विधि से करते समय आदि में एक सौ आठ नवार्णक मन्त्र का जाप न करे। मध्यमें सप्तशती का पाठ करे अन्त में भी एक सौ आठ नवार्णक मन्त्र का जप न करे–इससे नवार्णक का सम्पुट हो जाता है। गायन द्वारा पाठ करना, शीघ्रता से पाठ करना, सिर कम्पित करके पाठ करना, पुस्तक पर जैसा भी लिखा हो वैसा पाठ करना, मन्त्रों का अर्थ न जानकर पाठ करना, थोड़ा परिश्रम करके पाठ करना यह छः प्रकार के पाठ करने वाले अधर्म पाठक माने गये हैं।

* महाकाली ध्यानम् *

ॐखड्‌गं चक्र गदेषु चापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः ।
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वांगभूषावृताम् ॥
नीला श्मद्युतिभास्य पाद दशकां सेवे महाकालिकां ।
या मस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुम् कैटभम् ॥ १ ॥

श्री ब्रह्माजी ने भगवान विष्णु के सो जाने पर मधु और कैटभ का संहार करने के लिए जिस महाकालिका की स्तुति की थी और जो अपने दस हाथों में शंख, चक्र, गदा, वाण, धनुष, परिघ, त्रिशूल, भुशुण्डि, सिर तथा खंग धारण कर रही है, तीनों नेत्रों वाली, सारे अंगों में आभूषणों से भूषित नीलमणि के समान सुन्दर, दस पैरों वाली महाकालिका की मैं सेवा करता हूँ ।

* अथ देव्या कवचम् *

❀ चण्डीकवचस्य विनियोग: ❀

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा–ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः, चामुण्डा–देवता अंगन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठांगत्वेन जपे विनियोगः ।

इस कवच के ब्रह्मा ऋषि अनुष्टुप् छन्द, चामुण्डा देवता, अंगन्यास में कही हुई मातृाएं इसकाबीज हैं। देवतातत्व इसका दिग्बन्ध है । श्रीजगदम्बा की प्रसन्नताके लिए इस कवच के जप पाठमें विनियोग है ।

❀ कवच प्रारम्भः ❀

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥ मार्कण्डेय उवाच । ॐ यद् गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् । यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥ ब्रह्मोवाच ॥ अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् । देव्यास्तु कवचं पुण्यम् तच्छृणुष्व महामुने ॥२॥ प्रथमम् शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ॥ तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥३॥ पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ॥ सप्तमम् कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥ ४ ॥ नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ॥ उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥५॥ अग्निना दह्यमानस्तु

श्रीमार्कण्डेय ऋषि बोले कि हे ब्रह्माजी ! संसार में जो कवच अत्यन्त गुप्त हो और जो सब प्रकार से मनुष्यों की रक्षा करता हो और जो अब तक किसी को न बताया गया हो वह मुझसे कहिये ॥१॥ ब्रह्माजी बोले कि हे महामुने विप्र ! जो अत्यन्त गुप्त तथा समस्त प्राणियों का उपकार करने वाला पुण्यकारी देवीजी का कवच है उसे मुझसे तुम सुनो ॥२॥ प्रथम शैलपुत्री, द्वितीय ब्रह्मचारिणी, तृतीय चन्द्र घण्टा, चौथी कूष्माण्डा ॥३॥ तथा पांचवीं स्कन्दमाता, छठी कात्यायनी, सातवीं कालरात्रि, आठवीं महागौरी ॥४॥ और नवमी सिद्धिदात्री — यह नौ दुर्गाऐं महात्मा ब्रह्माजी ने वर्णन की हैं ॥५॥ जो मनुष्य

अग्नि से जलते समय, शत्रुओं के बीच में. रण में,तथा बड़े संकट में भय से पीड़ित होकर देवीजी की शरण में आये हुए इन नामों का स्मरण करते हैं ॥६॥ उनको रण के संकट में किंचित् मात्र भी अशुभ नहीं होता और उन पर मैं कभी विपत्ति तथा शोक, दुःख और भय नहीं देखता हूँ ॥७॥ और हे देवेशि ! जो

शत्रुमध्ये गतो रणे ॥ विषमे दुर्गमे चैव भयार्त्ताः शरणं गताः ॥६॥ न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे ॥ नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥७॥ यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते ॥ ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥८॥ प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना । ऐन्द्री गजसमारूढ़ा वैष्णवी गरुड़ासना ॥९॥ माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना । लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥१०॥ श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना । ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ॥११॥ इत्येता

भक्ति सहित तुम्हारा स्मरण करते हैं । उनकी वृद्धि होती है और इसमें सन्देह नहीं कि उनकी तुम अवश्य रक्षा करती हो ॥८॥ चामुण्डा देवी प्रेत पर स्थित है, वाराही भैंसे पर, ऐन्द्री हस्ती पर, वैष्णवी गरुड़ पर ॥९॥ माहेश्वरी बृष पर, कौमारी मोर पर और हाथ में कमल लिये हुए विष्णु प्रिया श्रीलक्ष्मीजी कमल पर विराजमान हैं ॥१०॥ श्वेतरूप धारण किये हुए ईश्वरी देवी बैल पर तथा सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित ब्राह्मी देवी हंस पर आसन लगाये हुए हैं ॥११॥ इस तरह यह सम्पूर्ण देवियां सब योगों से युक्त

और अनेक प्रकार के आभूषणों और रत्नों से सुशोभित हो रही हैं ।।१२।। ये सब देवियां क्रोध में भरी
हुई तथा रथ की सवारी में बैठी हुई दीख पड़ती हैं और शंख, चक्र, गदा, शक्ति, हल, मूसल ।। १३ ।।
खेटक, तोमर, फर्सा, फांसी, भाला, त्रिशूल और उत्तम आयुध शारंग धनुष आदि को दैत्यों के देह नाश

मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः ।। नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ।। १२ ।। दृश्यन्ते रथमारूढ़ा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।। शंखम् चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधं ।। १३ ।। खेटकम् तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।। कुन्तायुधं त्रिशूलम् च शार्ंगमायुधमुत्तमं ।।१४।। दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च । धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ।। १५ ।। नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे । महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ।। १६ ।। त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि ।। प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ।। १७ ।। दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खंगधारिणी ।। प्रतीच्यां

के लिए तथा भक्तों के भय निवारणार्थ और देवताओं के हित के लिए इस प्रकार आयुध धारण करती हैं ।।१४-१५।। हे महारौद्रे ! हे महाघोर पराक्रम वाली ! तुमको नमस्कार है ! हे महाबल वाली ! हे महान् उत्साहवाली ! महाभय विनाशिनी! ।।१६।। हे कठिनता से दर्शन देने वाली ! हे शत्रुओं के भय बढ़ाने वाली ! देवी तुम मेरी रक्षा करो। ऐन्द्री देवी मेरी पूर्व दिशा में रक्षा करे ।।१७।। अग्नि शक्ति अग्नि कोण में वाराही देवी दक्षिण में, खंग धारिणी देवी मेरी नैर्ऋत्यकोण में रक्षा करें और वारुणी

देवी पश्चिम में, मृगवाहिनी देवी वायव्यकोण में रक्षा करें ॥ १८ ॥ कौमारी उत्तर में शूलधारिणी ईशान-कोण में, ब्रह्माणी ऊपर की ओर से, वैष्णवी नीचे की ओर से ॥ १९ ॥ तथा इसी प्रकार प्रेतवाहिनी चामुण्डा देवी मेरी दशों दिशाओं में रक्षा करे। जय देवी आगे की ओर से, विजया पीछे की तरफ से

वारुणी रक्षेद्वायव्यां मृगवाहिनी ॥१८॥ उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूल-धारिणी ॥ ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा ॥१९॥ एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना। जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः॥२०॥ अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता। शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥२१॥ मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद्यशस्विनी त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघंटा च नासिके॥२२॥ शंखिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ॥ कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शांकरी ॥२३॥ नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ॥

मेरी रक्षा करे ॥ २० ॥ अजिता बायीं ओर से और अपराजिता देवी दाहिनी ओर से रक्षा करे। उद्योतिनी देवी शिखा की रक्षा करे तथा उमा शिर में स्थित होकर रक्षा करे ॥ २१ ॥ मालाधारी ललाट में यशस्विनी भ्रुकुटियों की रक्षा करे और त्रिनेत्रा देवी भ्रुकुटियों के मध्य में, यम घण्टा दोनों नासिकाओं की रक्षा करे ॥२२॥ शंखनी देवी नेत्रों के मध्य में, द्वारवासिनी कानों में, कालिका कपोलों की, शांकरी कर्ण मूलों की रक्षा करे ॥२३॥ सुगन्ध नासिका में और चर्चिका ऊपर के होठ में, अमृतकला नीचे के

होठ की, सरस्वती जिह्वा की रक्षा करे ॥२४॥ कौमारी देवी दांतों की, चण्डिका कण्ठ स्थान की रक्षा करे। चित्रघण्टा घण्टिका की, महामाया तालु की रक्षा करे ॥२५॥ कामाक्षी ठोड़ी की. सर्वमंगला मेरी वाणी की रक्षा करे, भद्रकाली ग्रीवा की, धनुष धारिणी पीठ के वांसे की रक्षा करे ॥२६॥ नीलग्रीवा देवी कण्ठ

अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥२४॥ दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठ-देशे तु चण्डिका ॥ घण्टिकाम् चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२५॥ कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला। ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥२६॥ नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी। स्कन्धयोः खङ्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७॥ हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चांगुलीषु च ॥ नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥२८॥ स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः शोकविनाशिनी। हृदये ललिता देवी ह्युदरे शूलधारिणी ॥२९॥ नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा। पूतना कामिका मेढ्रम् गुदे महिषवाहिनी

के बाहिरी भाग की नलकूबरी नली की. खंगिनी दोनों कन्धों की, वज्र धारिणी मेरी दोनों भुजाओं की रक्षा करे ॥२७॥ दण्डिनी दोनों हाथों की और अम्बिका समस्त अंगुलियों की रक्षा करे। शूलेश्वरी सम्पूर्ण नखों की, कूलेश्वरी कुक्षि की रक्षा करे ॥२८॥ महादेवी दोनों स्तनों की शोकविनाशिनी मेरे मन की रक्षा करे, ललिता देवी हृदय की. शूलधारिणी उदर की रक्षा करे ॥२९॥ कामिनी नाभि की. गुह्येश्वरी गुह्यस्थान की, पूतना तथा कामिका लिंग की तथा महिषवाहिनी गुदा की रक्षा करे ॥३०॥

भगवती कटि भाग की और विन्ध्यवासिनी देवो दोनों घुटनों की रक्षा करे। सर्वकाम प्रदायिनी महावला देवी जघाओं की रक्षा करे ॥३१॥ नारसिंही, टकुनों की, तेजसी पाँवों के पृष्ठ भाग की, श्रीधरी पैरों की अँगुलियों की, स्थलवासिनी तलुवों की दंष्ट्राकरालिनी नखों की, ऊर्ध्वकेशिनी केशों की, कौमारी

॥३०॥ कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ॥ जंघे महाबला रक्षेत्सर्व-कामप्रदायिनी ॥३१॥ गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी । पादांगुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥३२॥ नखान्दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी ॥ रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥३३॥ रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमे-दांसि पार्वती । अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥३४॥ पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा।ज्वाला मुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु॥३५॥ शुक्रम् ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायाँ छत्रेश्वरी तथा । अहंकारम् मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥३६॥ प्राणापानौ तथा व्यानमुदानञ्च समानकम् ॥ वज्रहस्ता च

रोम कूपों की, वागीश्वरी त्वचा की रक्षा करे ॥३३॥ पारवती रक्त, मज्जा बसा. माँस. हड्डियां और मेदे की रक्षा करे। कालरात्रि आँतों की, मुकुटेश्वरी देवी पित्त की रक्षा करे ॥३४॥ पद्मावती पद्मकोष की, चूड़ामणि कफ की रक्षा करे। ज्वालामुखी नसों के जल की, अभेद्या समस्त जोड़ों की रक्षा करे ॥३५॥ ब्रह्माणी मेरे वीर्य की, छत्रेश्वरी छाया की रक्षा करे और धर्मधारिणी मेरे अहंकार मन तथा बुद्धि की रक्षा करे ॥३६॥ प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान की वज्रहस्ता रक्षा करे। मेरे प्राण की कल्याण

शोभना देवी रक्षा करे ॥३७॥ योगिनी देवी रस, रूप, गन्ध, शब्द और स्पर्श को तथा नारायणी सर्वदा सत्व, रज और तम की रक्षा करे ॥३८॥ वाराह देवी आयु की तथा वैष्णवी धर्म की रक्षा करे। यश, कीर्ति, लक्ष्मी, धन और विद्या की चक्रिणी देवी रक्षा करे ॥३९॥ इन्द्राणी मेरे देह की रक्षा करे और हे

मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना ॥३७॥ रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी। सत्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥३८॥ आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी। यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥३९॥ गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके॥ पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥४०॥ पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा। राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥४१॥ रक्षाहीनं तु यत्स्थानम् वर्जितम् कवचेन तु। तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥ ४२ ॥ पदमेकन्न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः कवचे-

चण्डिके! आप मेरे समस्त पशुओं की रक्षा करिये। श्री महालक्ष्मी देवी पुत्रों की तथा भैरवी देवी मेरी भार्या की सर्वदा रक्षा करे ॥४०॥ मार्ग में कुशल रखने वाली सुपथा देवी यात्रा में रक्षा करे और क्षेमकरी देवी आपत्तियों से बचावे। महालक्ष्मी राजद्वार में और विजया देवी चारों ओर से मेरी रक्षा करे ॥४१॥ जो स्थान रक्षा से रहित हो और कवच में रह गया हो, उन स्थानों की पापों को नाश करने वाली जयन्ती देवी रक्षा करे ॥४२॥ अपने शुभ की इच्छा चाहने वाले मनुष्य को तो कवच के बिना एक पैर

भी कहीं न जाना चाहिए, क्योंकि सदा कवच रखने वाला मनुष्य जहां भी जाता है ।।४३।। वहां वह धन लाभ और समस्त कामनाओं की सिद्धि के साथ विजय प्राप्त करता है और मनुष्य जिन-जिन कामनाओं की इच्छा करता है वह देवी कवच के प्रताप से निश्चय उसको मिलती हैं और पृथ्वी पर

नावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ।। ४३ ।। तत्र तत्राऽर्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः । यं यं चिन्तयते कामम् तं तं प्राप्नोति निश्चितम् । परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ।।४४।। निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः । त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतःपुमान्।।४५।।इदं तु देव्याः कवचम् देवानामपि दुर्लभम् ।। यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसंध्यं श्रद्धयान्वितः ।।४६।। दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः । जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ।।४७।। नश्यन्ति व्याधयः

अतुल परम ऐश्वर्य पाता है ।।४४।। और कवच धारण किया हुआ मनुष्य युद्ध में निर्भय होता हुआ विजय प्राप्त करता है ।।४४।। और वह मनुष्य कवच से आवृत हुआ त्रैलोक्य में पूजनीय होता है। यह देवी का कवच तो स्वर्गवासी देवताओं को भी दुर्लभ है। श्रद्धायुक्त जो मनुष्य पवित्र होकर नित्य तीनों सन्ध्याओं में इस देवी कवच का पाठ करता है ।।४६।। उस मनुष्य को देवी-कला मिलती है और वह तीनों लोकों को भी जीत सकता है तथा अकाल मृत्यु से रहित होकर सौ वर्षों से अधिक जीवित रहता है ।। ४७ ।। उसको लूता, विस्फोटक आदि समस्त आधि-व्याधियां समूल नष्ट हो जाती हैं और स्थावर, जंगम तथा

कृत्रिम विषादि ।।४८।। और समस्त अभिचार एवं मन्त्र, यन्त्र-तन्त्र जो पृथ्वी पर हैं और भूचर प्राणी, नभचर प्राणी और उपदेशिक ।।४९।। साथ उत्पन्न हुए तथा कुल में प्रकट हुए रोग और गण्डमाला तथा डाकिनी, शाकिनी, अन्तरिक्षचर प्राणी और महापौरुष वाली भयंकर डाकिनियां ।।५०।। ग्रह, भूत, पिशाच

सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।।४८।। स्थावरञ्जंगमञ्चैव कृत्रिमञ्चापि यद्विषम् ।। अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।।४९।। भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः । सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।।५०।। अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः । ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः।।५१।।ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ।। नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।।५२।। मानोन्नतिर्भवेद्राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम ।। यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।।५३।। जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचम् पुरा । यावद् भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।।५४।। तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ।।

यक्ष, गन्धर्व और राक्षस, ब्रह्म-राक्षस, बेताल, कूष्माण्ड और भैरवादि ।।५१।। इस देवी-कवच का हृदय में धारण करने वाले मनुष्य के दर्शन मात्र से ये सब दूर हो जाते हैं और इस कवच से मान की उन्नति होती है और यह कवच राजा के प्रकाश को बढ़ाने वाला है ।।५२।। प्रथम इस कवच का पाठ करके जो मनुष्य सप्तशती चण्डी का पाठ करता है उसकी कीर्ति जगत में विख्यात होती है ।।५३।। और भूमण्डल पर जब तक पर्वत,वन,वृक्षादि स्थित हैं तब तक इस कवचके पाठ करने वाले मनुष्यकी पुत्र-पौत्रादि सन्तति

पृथ्वी पर स्थित बनी रहती है ॥५४॥ और महामाया देवी की परम अनुकम्पा से यह मनुष्य देहान्त होने पर परम धाम को प्राप्त करता है, जो देवताओं को भी दुर्लभ है ॥५५॥ और अन्त में परमस्वरूप को प्राप्त हुआ शिवजी के संग आनन्द भोगता है ॥५६॥ इति श्री देव्याः कवचम् समाप्तम् ।

देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥५५॥ प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामाया-प्रसादतः । लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ ॐ ॥५६॥

* अथ अर्गलास्तोत्रम् *

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहा-लक्ष्मीर्देवता, श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठांगत्वेन जपे विनियोगः ।

अब अर्गलास्तोत्र प्रारम्भ किया जाता है। इस अर्गलास्तोत्र के मन्त्रों के विष्णु ऋषि हैं। अनुष्टुप् छन्द हैं। इनका देवता महालक्ष्मी है। श्रीजगदम्बा की प्रसन्नता के लिये सप्तशती पाठ के अंग होने के कारण जप में इस स्तोत्र का विनियोग है।

ॐ जयन्ती मंगलाकाली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥१॥ जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणी ॥ जय

जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री स्वाहा, स्वधा आदि स्वरूपों वाली देवी तुम्हें नमस्कार है ॥१॥ हे देवि! हे चामुण्डे! हे जीवों के कष्ट दूर करने वाली, हे

सर्व व्यापिनी ! हे कालरात्रि ! तुमको नमस्कार है ॥२॥ हे मधुकैटभ दैत्य का संहार करने वाली ! ब्रह्मा को वर देने वाली ! हे देवि तुमको नमस्कार है। हे देवि ! मेरे लिये सुन्दर रूप दो, विजय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं का संहार करो ॥३॥ हे महिषासुर दैत्य को संहारने वाली ! हे भक्तों को आनन्द

सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥२॥ मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥३॥ महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ॥ रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ॥४॥ रक्तबीजवधे देवि चण्ड-मुण्डविनाशिनि। रूपं देहि जयं देहि,यशो देहि द्विषो जहि ॥५॥ शुम्भस्यैव निशु-म्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनी ॥ रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि।६। वन्दि-ताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ॥ रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ॥७॥ अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि ॥ रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि ॥८॥ नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे। रूपं देहि जयं देहि,

देने वाली ! तुमको नमस्कार है। मुझे स्वरूप दो, विजय दो और वैरियों को नष्ट करो ॥४॥ हे रक्तबीज का बध करने वाली ! हे चण्डमुण्डों को नाश करने वाली ! मुझको स्वरूप, विजय तथा संसार में यश दो और मेरे वैरियों को नष्ट करो ॥५॥ हे निशुम्भ और धूम्राक्ष राक्षस का मर्दन करने वाली देवि ! मुझको स्वरूप दो तथा विजय दो और मेरे शत्रओंका नाश करो ॥६॥ हे पूजित चरणयुगलों वाली ! हे सर्व सौभाग्यदायिनी ! मुझको स्वरूप दो, जय दो, दिव्य कीर्ति दो तथा शत्रुओं का मर्दन करो ॥७॥ हे अचि-

न्तनीय रूप और चरित्रों वाली ! हे समस्त शत्रु नाशिनी देवि ! मुझको स्वरूप दो, यश दो और मेरे समस्त शत्रुओं का नाश करो। हे चण्डिके ! दुःख विनाशिनी देवि भक्ति से सर्वदा प्रणाम करने वालों को आप रूप दीजिये, विजय दीजिये तथा यश दीजिये और उनके शत्रुओं का विनाश करिये ॥९॥ हे चण्डिके !

यशो देहि द्विषो जहि ॥९॥ स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१०॥ चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः ॥ रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥११॥ देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम्। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ।१२। विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ॥ रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१३॥ विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम्। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१४॥ सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि

हे समस्त रोगनाशिनी ! भक्ति पूर्वक आपकी स्तुति करने वाले भक्तों को आप स्वरूप दीजिये और यश दीजिये और उनके शत्रुओं का नाश करिये ॥१०॥ हे चण्डिके ! इस संसार में जो भक्ति से निरन्तर तुम्हारा पूजन किया करते हैं उनको आप रूप तथा विजय और यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥११॥ हे देवि ! मुझें सौभाग्य दो, आरोग्य तथा पूर्ण सुख और रूप दो, यश दो और मेरे शत्रुओं को नष्ट करो ॥१२॥ हे देवि ! वैरियों का संहार करो और अधिक बल प्रदान करो और रूप, जय, यश दो और शत्रुओं का विनाश करो ॥१३॥ हे देवि ! मेरा कल्याण करिये और मुझे सर्व सम्पत्ति दीजिये और मुझको रूप,

विजय तथा यश दो और मेरे सब बैरियों का विनाश करो ॥१४॥ हे सुर-असुरों के मुकुट रत्नों से स्पर्श किये हुए चरणों बाली ! हे अम्बिके ! मुझे स्वरूप दो, विजय दो तथा यश दो और मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥१५॥ और हे देवि ! अपने भक्तों को विद्यावान्. कीर्तिवान् और लक्ष्मीवान् करिये और रूप दीजिये,

द्विषो जहि ॥१५॥ विद्यावन्तम् यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु ॥ रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१६॥ प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ॥ रूपम् देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१७॥ चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि । रूपम् देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१८॥ कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ॥ रूपम् देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१९॥ हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ॥ रूपम् देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२०॥ इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि । रूपम् देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो

जय दीजिये तथा यश दीजिये और शत्रुओं को नष्ट करिये ॥१६॥ हे प्रचण्ड असुरों के अभिमान को विनाशने वाली हे चण्डिके ! मुझ नम्र हुए को रूप दो, विजय दो, यश दो और मेरे वैरियों को नष्ट करो ॥१७॥ हे चार भुजाओं वाली ! हे ब्रह्मा से स्तुति की हुई परमेश्वरी ! मुझको रूप, जय, यश दो, और मेरे वैरी का नाश करो ॥१८॥ निरन्तर भक्ति से कृष्ण से सदा स्तुति की हुई हे अम्बिके ! रूप, जय, यश दो और वैरियों का नाश करो ॥१९॥ हे हिमाचल की पुत्री के नाथ (शिवजी) से स्तुति की हुई । हे परमेश्वरि ! मुझे रूप, जय, यश दो और मेरे वैरियों का नाश करो ॥२०॥ इन्द्राणी के पति (इन्द्र) द्वारा

सद्भाव से पूजित की हुई परमेश्वरी ! मुझे रूप, जय, यश दो और मेरे वैरियों का नाश करो ॥२१॥ हे देवि ! हे प्रचण्ड भुजदण्ड से दैत्यों के दर्प को दलन करने वाली ! मुझे रूप, जय, यश दो और मेरे वैरियों का नाश करो ॥२२॥ हे देवि ! हे भक्तजनों के लिये अत्यन्त दिये हुए आनन्द के उदय करने वाली

जहि॥२१॥ देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि । रूपम् देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२२॥ देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ॥ रूपम् देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२३॥ पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीं ॥ तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥२४॥ इदम् स्तोत्रम् पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः । स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥२५॥

अम्बिके ! मुझे रूप, जय, यश दो और मेरे वैरियों का नाश करो ॥२३॥ और हे देवि ! हे सुन्दरि ! मन के वृत्तान्त के अनुसार चलने वाली तथा दुस्तर संसार-सागर से तारने वाली, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने वाली ऐसी सुन्दर पत्नी मुझे दो ॥२४॥ जो नर प्रथम इस स्तोत्र का पाठ करके पश्चात् महास्तोत्र अर्थात् कीलक का पाठ करता है, वह सप्तशती संख्या के वर के समान सम्पत्ति को प्राप्त करता है ॥२५॥

* अथ कीलक स्तोत्रम् *

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव-ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे (पाठे) विनियोगः ॥

अर्थ—कीलक मन्त्र आरम्भ होता है। इस मन्त्र के शिवजी ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द हैं, श्रीमहासरस्वतीजी देवता हैं, यह सप्तशती के पाठ का अंग हैं, श्रीजगदम्बा की प्रसन्नता के लिये इसके जपने का विनियोग है।

मार्कण्डेय ऋषि कहने लगे--निर्मल ज्ञान रूपी शरीर धारण करने वाले वेदत्रयी रूप, दिव्य तीन नेत्र वाले, अर्ध चन्द्र धारण करने वाले ऐसे श्री शिवजी को कल्याण प्राप्ति के निमित्त नमस्कार है ॥१॥ जो पुरुष जप में तत्पर रहता हुआ मन्त्रों के इस कीलक को जानता है, वही पुरुषकल्याण को प्राप्त करता

मार्कण्डेय उवाच । ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ॥ श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्ध धारिणे ॥१॥ सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम् । सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥२॥ सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि । एतेनस्तुवतां देवि स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥३॥ न मन्त्रो नौषधं तत्र न किंचिदपि विद्यते । विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥४॥ समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशंकामिमां हरः । कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभं ।५।

है ॥२॥ इस कीलक से उच्चाटन आदि सम्पूर्ण वस्तुऐं भी सिद्ध हो जाती हैं और इस कीलक स्तोत्र मात्र से ही स्तुति की हुई देवी भी सिद्ध हो जाती है ॥३॥ जिससे जप किये बिना उच्चाटन आदि सब सिद्ध हो जांय, ऐसा न तो कोई मन्त्र है, न औषध, न तन्त्र है। सम्पूर्ण वस्तुयें ही सिद्ध हो जायेंगी, इस लोक शंका को समझकर महादेवजी ने इस सम्पूर्ण ही शुभ को अर्थात् मन्त्र-तन्त्र आदिकों को कील दिया है। इसलिये उन महादेवजी ने चण्डिका के स्तोत्र को भी गुप्त कर दिया है, इसीलिये मनुष्य इस चण्डिका स्तोत्र

की यथावत् नियन्त्रणा (कीलक) को सत्पुण्य से ही प्राप्त करता है ॥४—५—६॥ इसमें सन्देह नहीं कि वह सम्पूर्ण कल्याण को प्राप्त करता है, जो मनुष्य इसमें सावधान होकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी अथवा अष्टमी को ॥७॥ प्रथम देवीजी को वस्तु (पूजा द्रव्य) देता है फिर उसे प्रसाद रूप में लेता है उसी को

स्तोत्रम् वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तंचकार सः। समाप्तिर्नचपुण्यस्य,तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥६॥ सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवम् न संशयः। कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥७॥ ददाति प्रतिगृह्णाति नाऽन्यथैषा प्रसीदति। इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन किलितम् ॥८॥ यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम्। स सिद्धः स गणः सोऽपि, गन्धर्वो जायते नरः ॥९॥ न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते। नाऽपमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१०॥ ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति। ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदम् प्रारभ्यते बुधैः ॥११॥ सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यतै ललनाजने। तत्सर्वं

यह दुर्गा सिद्ध होती है अन्यथा नहीं होती है, ऐसे कीलक से यह स्तोत्र महादेवजी ने कीलित किया है ॥८॥ जो पुरुष इस दुर्गा सप्तशती को निष्कीलन करके नित्य पाठ करता है वह सिद्ध वा गण अथवा गन्धर्व हो जाता है ॥९॥ बिचरते हुए उस पुरुष को कहीं भी भय नहीं होता है ओर न अपमृत्यु होती है तथा वह मनुष्य मरकर मोक्ष प्राप्त करता है ॥१०॥ किन्तु इसकी विधि को अच्छी तरह से जानकर ही

इसके पाठ का प्रारम्भ करे और विधि को न जानकर पाठ करता हुआ हो तो नष्ट हो जाता है। इससे पण्डितजन इसको साँगोपांग जानकर ही पाठ करने का आरम्भ करते हैं ॥११॥ हे देवि ! स्त्री-जनों में जो कुछ भी सौभाग्य आदि दीख पड़ते हैं, वह सब आपकी ही कृपा से हैं,इसलिये यह जपने योग्य है ॥१२॥

तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदम् शुभम् ॥१२॥ शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्ति रुच्चकैः ॥ भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥१३॥ ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः ॥ शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॐ ॥१४॥ इति देव्या कीलकस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥

* अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम् *

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीं । निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥१॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वं स्वाहाः त्वं स्वधाः त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका । सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥२॥ अर्धमात्रा-

और जो मनुष्य इस स्तोत्र का शनैः शनैः स्पष्टतया पाठ करते हैं, उनकी समस्त सम्पत्ति प्राप्त होती हैं अतः प्रारम्भ इसका करना ही चाहिये ॥१३॥ जिस भगवती की कृपा से मनुष्यों को ऐश्वर्य, सौभाग्य आरोग्य और सम्पदायें प्राप्त होती हैं तथा शत्रुओं की हानि और श्रेष्ठ मोक्ष की प्राप्त होती है उस देवी की मनुष्यों को क्यों नहीं स्तुति करनी चाहिये अर्थात् अवश्य ही करनी चाहिये ॥१४॥

स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः । त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥३॥ त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् । त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥४॥ विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने । तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥५॥ महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः । महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥६॥ प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी । कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥७॥ त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा । लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥८॥ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा । शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा ॥९॥ सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी । परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥१०॥ यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके । तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥११॥ यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् । सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥१२॥ विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च । कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥१३॥ सा त्वमित्थं प्रभावैः

स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता । मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ।।१४।। प्रबोधञ्च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु । बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ।१५। इति रात्रिसूक्तम् ।।

* सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम् *

प्रतिदिन प्रातःकाल इस स्तोत्र का पाठ करने से सब प्रकार के विघ्न-बाधा नष्ट हो जाते हैं। इस कुञ्जिका-स्तोत्र तथा देवीसूक्त के सहित सप्तशती के पाठ से परम सिद्धि प्राप्त होती है। मारण-काम-क्रोध, नाश, मोहन—इष्टदेव मोहन, वशीकरण—मनका वशीकरण, स्तम्भन—इन्द्रियों की विषयों के प्रति उपरति और उच्चाटन—मोक्ष प्राप्ति के लिये छटपटाहट ये सभी इस स्तोत्र का इस उद्देश्य से सेवन करने से सफल होते हैं।

शिव उवाच ।। श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् । येन मन्त्र-प्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत् ।।१।। न कवचं नार्गलास्तोत्रं, कीलकं न रहस्य-कम् । न सूक्तं नापि ध्यानं च,न न्यासो न च वार्चनम् ।२। कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् । अति गुह्यतरं देवि ! देवानामपि दुर्लभम् ।।३। गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ! मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् । पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।।४।।

अथ मन्त्रः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ।। ॐ ग्लौं हुँ क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वलज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ।। इतिमन्त्रः।। नमस्ते रुद्ररूपिण्यै, नमस्ते मधुमर्दिनि । नमः कैटभहारिण्यै, नमस्ते महिषार्दिनि।।१।।नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भाऽसुरघातिनि ।२। जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे । ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ।।३।। क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तुते ।। चामुण्डा चण्डघाती च,यैकारी वरदायिनी ।।४।। विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ।।५।। धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी । क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शां शीं शूं मे शुभं कुरु ।।६।। हुँ हुँ हुँकाररूपिण्यै, जं जं जं जम्भनादिनी ।। भ्रां भ्रीं भ्रूँ भैरवी भद्रे, भवान्यै ते नमोनमः ।७। अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरुकुरु स्वाहा ।८। पां पीं पूं पार्वती पूर्णा, खां खीं खूं खेचरी तथा सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्र सिद्धिं कुरुष्व मे ।।९।। इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्ति हेतवे ।। अभक्ते नैव दातव्यं, गोपितं रक्ष

पार्बति ॥ यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत् ॥ न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥

॥ इति श्री रुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

* नवार्ण मन्त्र जप विधि *

श्री गणपतिर्जयति । 'ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वती प्रीत्यर्थे जपे न्यासे विनियोगः ।'

ऋष्यादिन्यासः- ब्रह्म विष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-छन्दोभ्यो नमः, मुखे । महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि । ऐं बीजाय नमः, गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः पादयोः । क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'—इस मूलमन्त्र से हाथों की शुद्धि करके करन्यास करे ।

मध्यमाभ्यां नमः। ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः ॥ ॐ ऐं हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्। ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्।

॥ अक्षरन्यासः ॥ ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिण नेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ यैं नमः, वामनासापुटे। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चे नमः, गुह्ये।

॥ दिङ्न्यासः ॥ ॐ ऐं प्राच्यै नमः। ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः। ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः। ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः। ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः

* सप्तशती न्यासः *

प्रथममध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्वानि, ऋग्यजुः सामवेदाध्यानानि, सकलकामना सिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वती देवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ॐ खंगिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा । शंखिनी चापिनी वाणभुशुण्डीपरिघायुधा । अंगुष्ठाभ्यां नमः ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके । घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च ।। तर्जनीभ्यां नमः ।। ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे । भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ।। मध्यमाभ्यां नमः ।। ॐसौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्तिते । यानि चात्यर्थंघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ।। अनामिकाभ्यां नमः ।। ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके । करपल्लवसंगीनि तैरस्मात् रक्ष

सर्वतः ॥ कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ॐ सर्वस्वरूपेसर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते । करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । खड्गनी शूलिनी घोरा०-हृदयाय नमः । शूलेन पाहि नो देवि०-शिरसे स्वाहा । प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च०-शिखायै वषट् । सौम्यानि यानि रूपाणि० कवचाय हुम् । खड्गशूलगदादीनि०–नेत्रत्रयाय वौषट् । सर्वस्वरूपे सर्वेशे०-अस्त्राय फट् ॥

ध्यानम् ॥ विद्युद्दामसमप्रभां मृगप्रतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् । हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

❀ इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य मध्यमस्वरेण स्तवं पठेत् ❀

-: ❀ :-

अथ दुर्गा सप्तशती प्रारभ्यते:

❀ प्रथम अध्याय ❀

इस श्री प्रथम चरित्र का बृह्मा ऋषि है, महाकाली देवता है, गायत्री छन्द है, नन्दा शक्ति है, रक्तदन्तिका बीज है, अग्नि तत्व है और ऋग्वेद की मूर्ति है, श्रीमहाकाली की प्रीति के लिये इसका प्रथम चरित्र के पाठ में विनियोग है।

ॐ प्रथम चरित्रस्य ब्रह्मा!ऋषि:,महाकाली देवता, गायत्री छन्द: नन्दाशक्ति:, रक्तदन्तिका बीजं, अग्निस्तत्त्वं, ऋग्वेद: स्वरूपम्, श्रीमहाकाली प्रीत्यर्थे प्रथमच्चरित्र जपे विनियोग:।।ॐऐं।। मार्कण्डेय उवाच ।।१।। ॐ सावर्णि सूर्यतनयो यो मनु: कथ्यतेऽष्टम: ।। निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो मम ।।२।। महामायानुभावेन

महर्षि मार्कण्डेयजी बोले–।।१।। मैं सूर्य के पुत्र सावर्णि की उत्पत्ति विस्तार से कहता हूँ, जोकि वे आठवें मनु कहे जाते हैं, आप ध्यान देकर सुनिये ।।२।। सूर्य पुत्र भाग्यशाली सावर्णि महामाया की कृपा

से जिस तरह से मन्वन्तर का अधिपति बना वह कथा भी सुनिये ।।३।। पहल स्वारोचिष नामक मन्वन्तर में समस्त भूमण्डल पर चैत्रवंशी राजा सुरथ राज्य करते थे ।।४।। उस समय अपने पुत्र की भांति प्रजा का पालन करते हुए राजा सुरथ से कोलाविध्वंसी (सूअरों को न मारने वाले) राजाओं की शत्रुता होगई ।।५।।

यथा मन्वन्तराधिपः । स बभूव महाभागःसावर्णिस्तनयो रवेः।।३।। स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः । सुरथोनाम राजाऽभूत्सम-स्ते क्षितिमण्डले ।।४।। तस्य पालयतःसम्यक् प्रजाःपुत्रानिवौरसान्। बभूवुःशत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ।।५।। तस्य तैरभवद्युद्ध-मतिप्रबलदण्डिनः ।। न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ।६। ततःस्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् । आक्रान्तःस महाभागस्तै स्तदा प्रबलारिभिः।।७।। अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।

दुष्टों को दण्ड देने वाले राजा सुरथ से उनका घोर संग्राम हुआ और थोड़ी सेना होते हुए भी उन कोला-विध्वंसियों ने राजा सुरथ को जीत लिया ।।६।। फिर राजा सुरथ अपने नगर में आकर केवल स्वदेश का ही राज्य शासन करने लगा । तब भी अन्य शत्रुओं ने इस दीनदयालु महाभाग राजा सुरथ पर आक्रमण किया ।।७।। और दुष्ट मन्त्रियों ने उस राजा का धन कोष तथा सेना अपने अधीन करली ।।८।। तब राजा

सुरथ अपने राज्याधिकार को हार कर अकेला घोड़े पर सवार होकर भयंकर वन में शिकार खेलने के बहाने से चला गया ॥९॥ उसी वन में महर्षि मेधा का दिव्य आश्रम था, वहां वे शान्त चित्त हुए सिंह हिरण आदिकों से व्याप्त, निज शिष्यों तथा मुनियों से सुशोभित हुए बैठे थे ॥१०॥ उन मेधा मुनि को

कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥८॥ ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः । एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥९॥ स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः । प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनि-शिष्योपशोभितम् ॥१०॥ तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः । इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥११॥ सोऽचिन्त-यत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः । मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥१२॥ मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा । न जाने स

राजा सुरथ ने प्रणाम किया और उन मुनि द्वारा उचित सत्कार किया गया वह राजा सुरथ कुछ समय तक उसी आश्रम में स्थित रहा, फिर उस मेधा मुनि के पवित्र आश्रम में विचरण करता हुआ वह राजा सुरथ निज पुर को ममता से आकर्षित बुद्धि युक्त होता हुआ विचार करने लगा कि जिस नगर का मेरे पूर्वजों ने आज तक पालन पोषण किया था सो वह आज मुझसे चला गया ॥११-१२॥ वे मेरे दुराचारी नौकर मेरे पुर की अब धर्म से रक्षा कर रहे होंगे या नहीं। तथा सदा मदोन्मत्त रहने

वाला प्रधान, मेरा वीर हाथी मेरे वैरियों के वश में हुआ न जाने क्या दुःख भोगता होगा ? मुझे यह प्रतीत होता है कि मेरे जो आज्ञाकारी नौकर थे,जो धन तथा भोजन आदि पाकर सदैव पलते थे ।१३-१४। वे अवश्य ही इस समय उन दुष्ट राजाओं के आश्रित हुए दुःख भोगते होंगे तथा मेरे दुष्ट मन्त्री कुमार्ग में

प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ।।१३।। मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते । ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ।।१४।। अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् । असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ।।१५।। संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति । एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ।।१६।। तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकम् ददर्श सः । स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो ! हेतुश्चागमनेऽत्र कः ।।१७।। सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ।

व्यर्थ ही धन खर्च करते हुए अत्यन्त कष्ट से इकट्ठे किये मेरे धनकोष को नष्ट कर रहे होंगे। और इस प्रकार से वह खजाना एक दिन अवश्य नष्ट हो जायगा । इसी चिन्ता में वह राजा निरन्तर दुःखी होने लगा ।।१५-१६।। इसके अनन्तर एक दिन महर्षि मेधा के आश्रम के निकट उस राजा ने एक वैश्य को आश्रम की ओर आते देखा और फिर उससे राजा पूछने लगा कि भाई ! तुम कौन हो और यहाँ इस भयंकर वन में तुम्हारा आने का क्या प्रयोजन है ।।१७।। और तुम इस समय मलिन मुख होते हुए शोक

ग्रस्त से मुझे दिखाई देते हो, इसका क्या कारण है ? मुझसे कहो। राजा सुरथ के ऐसे विनम्र वचन सुन कर ॥१८॥ वह वैश्य प्रणाम करता हुआ, राजा को प्रश्न का उत्तर देने लगा ॥१९॥ वैश्य बोला ॥२०॥ हे नृपेन्द्र ! धनियों के वंश में उत्पन्न हुआ मैं समाधि नाम का वैश्य हूँ ॥२१॥ मेरे स्त्री पुत्रादिकों ने धन

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥१८॥ प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥१९॥ वैश्य उवाच ॥२०॥ समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥२१॥ पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः। विहीनश्च धनैर्दारैःपुत्रैरादाय मे धनम्।२२।वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः। सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥२३॥प्रवृत्तिं स्वजनानाञ्च दाराणाञ्चात्र संस्थितः। किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥२४॥ कथं ते किं नु

के लोभ में मेरा सब धन छीन लिया है और मुझे घर से बाहर निकाल दिया है ॥२२॥ इसी कारण स्वजनों से त्यागा हुआ मैं दुःखी होकर इस वन में आ गया हूँ और यहाँ मैं अपने पुत्रादिकों की कुशलता एवं अकुशलता का समाचार कुछ नहीं जानता कि वे घर पर इस समय क्षेम पूर्वक होंगे अथवा नहीं ॥२३-२४॥ मैं अपने पुत्रों के अच्छे-बुरे वृत्तान्त को भी नहीं जानता कि अब उनकी कैसी दशा है ॥२५॥

राजा बोला ॥२६॥ जिन लोभी पुत्रदारादिकों ने तुमको धन के कारण घर से निकाल दिया ॥२७॥ फिर भी तुम्हारा चित्त उनसे क्यों प्रेम कर रहा है ॥२८॥ वैश्य बोला ॥२९॥ मेरे विषयमें ऐसा आपका कहना यथार्थ है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥३०॥ किन्तु मेरा चित्त कठोर नहीं है, यद्यपि उन लोभी पुत्रों ने पितृ-स्नेह त्याग कर मुझको घर से निकाला, तब भी मेरी स्त्री ने तथा अन्य बन्धुजनों ने ऐसा करने से न

सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः।२५। राजोवाच ।२६। यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥२७॥ तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥२८॥ वैश्य उवाच । २९॥ एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥३०॥ किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः । यैःसन्त्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥३१॥ पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः। किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महा-

रोका और वे भी स्वयं मोह त्यागकर मुझे घर से निकाल देते भये। हे महामते ! मेरा मन फिर भी उन्हीं में फंस रहा है और इसका कारण क्या है, इस रहस्य का जानकार होता हुआ भी अनजान हो रहा हूँ ॥३१-३२॥ मेरा चित्त उन दुर्गुणी स्वजनों की ओर खिंच रहा है और उनके प्रति मुझे दुःख है और मेरा चित्त भी खिन्न होता है ॥३३॥ किन्तु क्या करूँ ? ऐसे भी निःस्नेहियों से मेरा हृदय (मन)

निष्ठुर नहीं होता ।।३४।। महर्षि मार्कण्डेय कहने लगे ।।३५।। हे विप्रवर ! इसके पश्चात् वह वैश्य और नृपेन्द्र सुरथ दोनों ही उस मेधा मुनि के समीप गये, वहां दोनों ने मुनिवर को प्रणाम किया, पुनः ।।३६-३७।। वहां बैठकर यथा योग्य भाषण करते हुए पार्थिव (राजा सुरथ) मुनिराज से कहने लगे ।।३८।।

मते ।।३२।। यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु । तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ।।३३।। करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ।।३४।। मार्कण्डेय उवाच ।।३५।। ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ।।३६।। समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः। कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ।३७। उपविष्टौ कथाःकाश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ।३८। राजोवाच।।३९।। भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ।४०। दुःखाय यन्मे मनसःस्वचित्तायत्ततां बिना । ममत्वं गतराज्यस्य राज्यांगेष्वखिलेष्वपि

राजा बोला ।।३९।। हे भगवन् ! मैं एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ सो आप कृपया कर उत्तर दें ।।४०।। मेरा ही मन मेरे अधीन नहीं है, इसका मुझे कष्ट है । गये हुए राज्य धनादिक की चिन्ता मुझे अभी तक

बनी है ॥४१॥ मेरी ममता अज्ञानियों की तरह विशेष बढ़ रही है और वह समाधि नामक वैश्य भो पुत्रादिकों से त्यागा हुआ घर से निकल आया है ॥४२॥ स्वजनों से त्यागा हुआ भी यह उन्हीं में अत्यन्त स्नेह करता है, इस प्रकार हम दोनों अत्यन्त दुःखी हैं ॥४३॥ हे महाभाग! उनके अवगुणों को देखते हुए भी हम दोनों के मन उस विषय में ममता रूपी पाप से आकृष्ट हो

॥४१॥ ज्ञानतोऽपि यथाऽज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम। अयञ्च निष्कृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥४२॥ स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति। एवमेष तथाहञ्च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ।४३। दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ। तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि।४४।ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता।४५। ऋषिरुवाच।४६। ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे।४७। विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक्। दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रा-

रहे हैं, हम जैसे विवेकियों को भी इस प्रकार के मोह होने का क्या हेतु है ॥४४॥ अज्ञानी पुरुषों जैसो वह मूढ़ता मुझे और इस वैश्य को क्यों प्रकट हो रही है ॥४५॥ तब मेधा ऋषि कहनेलगे हे ॥४६॥ समस्त जन्तुओं को जैसे विषय सामने आते हैं, उन्हें वैसा ही विवेक प्रकट होता है ॥४७॥ यथा

महाभाग ! सबके लिए विषय पृथक् २ होते हैं, कोई प्राणी तो दिन में अन्धे होते हैं और कोई रात्रि में ॥४८॥ कोई दिन तथा रात्रि में तुल्य दृष्टि वाले भी होते हैं। यह सत्य है कि मनुष्यों में ज्ञान प्रधान है किन्तु केवल उनमें ही नहीं ॥४९॥ सभी पशु, पक्षी, मृगादिक भी ज्ञान रखते हैं, जैसा मनुष्यों में ज्ञान होता है वैसा इन सबों में भी स्थूल रूप से बना रहता है ॥५०॥ जो मनुष्यों के आहार बिहारादिक धर्म

त्यावन्धास्तथापरे ।४८। केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः। ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किन्तु ते न हि केवलम्।४९।यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः। ज्ञानञ्च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम्।५०। मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः। ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्पतंगाञ्छावचञ्चुषु।५१।कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान्प्रति।५२।लोभात्प्रत्युप-

हैं, उन्हीं के तुल्य पशु आदिकों में हैं अर्थात् मनुष्यों के तुल्य ही पशु-पक्षियों में भी होती है। इसलिए प्रत्येक बात दोनों में एक-सी होती हैं। ज्ञान होने पर भी इन पक्षियों की ओर देखो, यह भूख से पीड़ित होने पर भी मोह के कारण अपने बच्चों की चोंचों में किसी प्रकार प्रेमसे चोगा दे रहे हैं। हे तेजस्वी नृप ! मनुष्य भी अभिलाषा सहित अपने पुत्रोंके साथ ऐसाही बर्ताव करते हैं।५१-५२। लोभ के कारण प्रत्युपकार में लगे हुए इनको क्यों नहीं देखते हो अर्थात् पुत्र आदि प्रत्युपकार न भी करे। तब भी माता-पिता तो

करते ही हैं कारण, वे संसार को स्थित रखने वाली भगवती महामाया के प्रभाव से ममता रूपी भँवर से युक्त मोह की गहरी खाई में डाले गये हैं। इसमें आश्चर्य करने की बात नहीं है क्योंकि यह भगवान विष्णु की योग निद्रा है ॥५३-५४॥ यह हरि भगवान की महामाया है जिसके कारण संसार मोह

कारा य नन्वेतान् किं न पश्यति । तथाऽपि ममता मोहगर्ते निपातिताः॥५३॥ महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा । तन्नात्र विस्मयःकार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥५४॥ महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यतेजगत् । ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥५५॥ बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति । तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥५६॥ सैषा प्रसन्ना वरदा, नृणां भवति मुक्तये । सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी

में ग्रसित है यही महामाया भगवती देवी ज्ञानियों के चित्त को बल पूर्वक खींच कर मोह में फँसा देती है तथा इस सम्पूर्ण चर व अचर जगत की उत्पत्ति इसी के द्वारा होती है ॥५५-५६॥ प्रसन्न होने पर यही देवी मुक्ति का वरदान देती है और यही मनुष्यों की मुक्ति का हेतु कारण, स्वरूप सनातनी परम विद्या हैं ॥५७॥ संसार के बन्धन का यही कारण है तथा सम्पूर्ण ईश्वरों की स्वामिनी हैं ॥५८॥ राजा बोला ॥५९॥ हे भगवन ! वह देवी जिसे आप महामाया कहते हैं । कौन सी हैं ॥६०॥

हे द्विज ! वह कैसे उत्पन्न हुई और उसका क्या कार्य है, उसका स्वभाव, रूप, उत्पत्ति आदि सबके बारे में मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥६१-६२॥ ऋषि बोले ॥६३॥ वह भगवती जगत की

॥५७॥ संसार बन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥५८॥ राजोवाच ॥५९॥ भगवन् काहिसा देवी महामायेति यां भवान् ॥६० ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज । यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥६१॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥६२॥ ऋषिरुवाच ॥६३॥ नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततं ॥६४॥ तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम । देवानां कार्य सिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥६५॥ उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।

आधार रूप, नित्य है उसी से यह संसार रचा गया है ॥६४॥ तब भी उसकी अनेक प्रकार से उत्पत्ति होती है वह तुम मुझसे सुनो, देवताओं का कार्य सिद्ध करने को जब प्रकट होती है ॥६५॥ तब वह अजन्मा होने पर भी उत्पन्न हुई कहलाती है संसार को जलमय कर जब भगवान विष्णु योग-

निद्रा में मग्न होकर शेष-शय्या पर आराम कर रहे थे, तब मधुकैटभ नाम के दो घोर असुर ।।६६-६७।। भगवान विष्णु के कान के मैल में से उत्पन्न होकर ब्रह्माजी के वध करने को तत्पर हुए, वे प्रजापति ब्रह्माजी विष्णु के नाभि-कमल में विराजमान थे ।।६८।। उन दोनों घोर असुरों

योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।।६६।। आस्तीर्य शेष-मभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः । तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।।६७।। विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माण-मुद्यतौ । स नाभिकमले विष्णोः, स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।।६८।। दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तञ्च जनार्दनम् । तुष्टाव योग-निद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ।।६९।। विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्र-कृतालयाम् । विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।।७०।।

को अपने वध करने को तैयार देखकर और भगवान विष्णु को निद्रा में देखकर एकाग्र मन से योग-निद्रा को सन्तुष्ट करने के लिए स्तुति करने लगे ।। ६९।। ताकि योगमाया भगवान के नेत्रों से अपना प्रभाव हटाले और वे जग जांय, ब्रह्माजी विश्वेश्वरी जगत माता, स्थिति तथा संहार करने वाली ।।७०।।

तथा तेज स्वरूप भगवान् विष्णु की अनुपम शक्ति निद्रा रूपी भगवती की इस प्रकार स्तुति करने लगे ब्रह्माजी बोले ॥७२॥ हे देवि ! तुम स्वाहा, तुम स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो और स्वर स्वरूप हो ॥७३॥ तुम्हीं अमृत हो, तुम्हीं नित्य अक्षरों में अकार, उकार, मकार इन तीन मात्राओं के रूप में स्थित हो तथा नित्य अर्धमात्रा में भी तुम्हीं हो जिनका विशेषकर उच्चारण नहीं हो सकता ॥७४॥ हे भगवती !

निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥७१॥ ब्रह्मोवाच ॥७२॥ त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ॥७३॥ सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता। अर्द्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥७४॥ त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा। त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥७५॥ त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा। विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।७६। तथा

आपही सावित्री सन्ध्या और सर्वोपरि माता हैं आप ही इस अखिल विश्व को धारण करने वाली एवं सृष्टि करने वाली हैं, आप ही इसका पालन करने वाली तथा अन्त में संहार करने वाली हैं रचना के समय सृष्टि स्वरूप तथा पालन काल में स्थिति रूप हो ॥७५-७६॥ हे जगन्मये ! अन्त में इस संसार का आप

ही संहार कर देती हैं, आप महाविद्या, महामाया. महामेधा, महास्मृति, महामोहा, महादवी, महासुरी हो एवं सत्य. रज, तम तीनों गुणों को उत्पन्न करने वाली प्रकृति हो ॥७७-७८॥ भीषण कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि आपही हैं, आप श्री ईश्वरी, ह्री, ज्ञान स्वरूप, बुद्धिहो ॥७९॥ लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति, क्षमा तथा खगशूल, घोर गदा, चक्र, शंख, धनुष, बाण, भुशुण्डी, परिघ धारण करने वाली आप ही हो, आप ही

संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये। महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥७७॥ महामोहा च भवती महादेवी महासुरी। प्रकृतिस्त्वञ्च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥७८॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा। त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वम् बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥७९॥ लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च। खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा। ८०। शंखिनी चापिनी बाण भुशुण्डीपरिघा-

सौम्या और सौम्यतर हो तथा सभी सौम्य और सुन्दर पदार्थों में आप ही अधिक सुन्दर हैं ॥८०-८१॥ पर अपरों में आप श्रेष्ठ हैं और परमेश्वरी भी आप ही हैं, हे अखिलात्मके ! जहां कहीं भी कोई सत् और

असत् वस्तु हैं ॥८२॥ उन सबकी शक्ति आप ही हैं इस कारण आपकी स्तुति किस प्रकार करे जगत की सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाले जो भगवान् हैं वे भी आपके द्वारा निद्रा के वश हो गये, आपकी स्तुति करने में कौन समर्थ है आपने ही मुझको (ब्रह्मा) विष्णु को, शंकरजी को भी शरीर धारण करा दिया

युधा । सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वति सुन्दरी ॥८१॥ परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी । यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥८२॥ तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया । यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ॥८३॥ सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः । विष्णुः शरीर ग्रहणमहमीशान एव च ॥८४॥ कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुम् शक्तिमान् भवेत् । सा त्वमित्थं

॥८३-८४॥ इस कारण आपकी स्तुति करने में कौन समर्थ है आप तो अपनी महानता से स्वयं ही प्रशंसित हो ॥८५॥ अब आप मधु और कैटभ नामक घोर असुरों को मोह लो, और जगत के स्वामी विष्णुजी को जगादो और इन महाअसुरों का संहार करने के लिए उन्हें बुद्धि दीजिये ॥८६-८७॥ ऋषि बोले ॥८८॥

जब ब्रह्माजी ने मधु कैटभ का संहार करने के कारण से और भगवान् विष्णु को जगाने के लिए तामसी देवी की इस प्रकार स्तुति की, तब वे भगवान् के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थल से ।।८९-९०।। निकल कर अजन्मा ब्रह्माजी के सन्मुख खड़ी हो गई और योग निद्रा से छूटकर भगवान् विष्णु

प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।।८५।। मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ । प्रबोधञ्च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।।८६।। बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महाऽसुरौ ।।८७।। ऋषिरुवाच ।।८८।। एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ।।८९।। विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ । नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ।।९०।। निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्त जन्मनः । उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ।।९१।। एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ । मधु-

भी जग गये ।।९१।। और शेषशय्या पर बैठे हुए ही उन घोर पराक्रमी वीर्यवान् मधुकैटभ दैत्यों को देखा

।९२। ब्रह्माजीके भक्षण करने के लिए जिनके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। तब भगवान विष्णुने उठकर पांच हजार वर्ष पर्यन्त उनसे बाहु युद्ध किया। अत्यन्त बल से उन्मत्त उनको महामाया ने मोह में डाल रखा था ॥९३-९४॥ वे केशव भगवान से कहने लगे-कि आप हमसे वर मांगिये ॥९५॥ श्री भगवान् कहने लगे ॥९६॥ जो तुम दोनों मुझसे सन्तुष्ट हो तो मेरे हाथ से मर जाओ।९७। अन्य वर से मुझे कोई मतलब नहीं

कैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥ ९२ ॥ क्रोधरक्तेक्षणा-वत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ। समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥९३॥ पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः। तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥ ९४ ॥ उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥ ९५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥९६॥ भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥९७॥ किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥९८॥ ऋषिरुवाच ॥९९॥ वञ्चिता-

है, मुझे केवल यही वर चाहिये ॥९८॥ ऋषि बोले ॥९९॥ इस प्रकार वचनवद्ध होने पर जब उन्होंने सारे संसार को जलमय देखा तो कमलनेत्र भगवान से कहने लगे कि भगवन ! हमारा वध वहाँ कीजिये

जहाँ पृथ्वी पर जल न हो ।।१००-१०१।। ऋषि बोले ।।१०२।। तब शंख, चक्र, गदाधारी भगवान ने 'तथास्तु' कहकर उन दैत्यों को अपनी जंघाओं पर लिटा कर उनके शिर चक्र से काट डाले ।।१०३।। इस

श्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ।।१००।। विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान्कमलेक्षणः । आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ।।१०१।। ऋषिरुवाच ।।१०२।। तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदाभृता । कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ।।१०३।। एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् । प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ।। ऐं ॐ ।।१०४।।

प्रकार ब्रह्मा के स्तुति करने पर वह देवी स्वयं ही प्रकट हुई है । इसके और प्रभाव का वर्णन मैं करता हूँ सो सुनो ।।१०४।। इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः।१।

* अथ द्वितीयोऽध्यायः *

ॐ अस्य श्रीमध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवता उष्णिक्छन्दः, शाकम्भरीशक्तिः, दुर्गाबीजं, वायुस्तत्त्वं, यजुर्वेदः

स्वरूपं, महालक्ष्मी-प्रीत्यर्थं, मध्यम-चरित्र जपे (पाठे) विनियोगः।

इस श्रीमध्यचरित्रके ऋषि विष्णु, देवता महालक्ष्मीजी, उष्णिक्छन्द, शक्तिशाकम्भरी, दुर्गा बीज, वायु तत्व एवं यजुर्वेद मूर्ति है। इस मध्यम चरित्रके पाठ में महालक्ष्मीजी की प्रीति के हेतु विनियोग है।

(इस प्रकार कहकर जल छोड़ना) फिर कमलासन पर विराजमान, प्रसन्न मुख वाली, महिषासुर मर्दिनी महालक्ष्मी देवी का ध्यान करना चाहिये, जो कि रुद्राक्ष की माला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति ढाल, घंटा, सुरापात्र, शूल, चक्र धारण किये हुए हैं।

अथध्यानम्। ॐअक्षयस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं, पद्मं धनुष्कुण्डिकां, दण्डं शक्तिमसिञ्च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्। शूलंपाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैःप्रसन्नाननां, सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्। 'ॐह्रीं'ऋषिरुवाच।१।देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतंपुरा। महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे।२। तत्रासुरैर्महावीर्यै-

ऋषि बोले ॥१॥ प्राचीन काल में देवताओं के राजा इन्द्र और असुरों के राजा महिषासुर में पूरे सौ वर्ष तक घोर संग्राम हुआ ।२॥ इस संग्राम में पराक्रमी असुरों ने देवताओं की सेना को परास्त कर दिया और सारे देवताओं को विजय करके महिषासुर इन्द्र हो गया ॥३॥ तब पराजित देवता प्रजापति ब्रह्मा को आगे करके भगवान विष्णु और शंकर के पास गये ॥४॥ और अपनी पराजय और महिषासुर के बल का पूरा वृतान्त विस्तार सहित सुनाया ॥५॥ सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, धर्मराज वरुण

आदि सब देवताओं के अधिकार छीनकर स्वयं ही सबका स्वामी बन बैठा है ॥६॥ उस दुरात्मा महिष ने सम्पूर्ण देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है इस कारण वे मनुष्य की तरह अब पृथ्वी पर विचर रहे हैं ॥७॥ देवताओं के शत्रु असुर का सब हाल हमने आपसे कहा, हम आपकी शरण हैं उसके

दैवसैन्यं पराजितम् । जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ।३। ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् । पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥४॥ यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् । त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ।५। सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च । अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥६॥ स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि । विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥७॥ एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् । शरणं वः प्रपन्नाःस्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥८॥ इत्थं

वध करने का शीघ्र ही विचार कीजिये ॥८॥ देवताओं के समस्त वचन सुनकर भगवान (मधुसूदन) और शंकरजी अत्यन्त क्रुद्धहुए, भौंहें तन गयीं,मुख लाल हो गया ॥९॥ पूर्ण क्रोध के कारण ब्रह्मा,विष्णु,महादेव के मुख से एक बड़ा तेज प्रकट हुआ ॥१०॥ अन्य इन्द्रादिक देवताओं के अंगों से भी तेज प्रकट होकर एक

जगह इकट्ठा हो गया ।।११।। जिसकी ज्वाला से सम्पूर्ण दिशायें व्याप्त हो गयीं और उस तेज के पुञ्ज को जलते हुए पर्वत ते समान देवताओं ने देखा ।।१२।। सब देवताओं के शरीर से निकला हुआ वह एकत्रित अतुल तेज अपनो कान्ति से तीनों लोकों को प्रकाशमान करके एक स्त्री के रूप में बदल गया ।।१३।।

निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः । चकार कोपं शम्भुश्च भ्रूकुटी-कुटिलाननौ ।।९।। ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः । निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ।।१०।। अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः । निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ।।११। अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् । ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ।।१२।। अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ।।१३।। यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् । याम्येन चाभवन्केशा बाहवो विष्णुतेजसा ।।१४।। सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत् । वा-

शिवजी के तेज से स्त्री का मुख, धर्मराज के तेज से बाल, विष्णु के तेज से भुजायें, चन्द्रमा के तेज से दोनों कुच, इन्द्र के तेज से कटिभाग, वरुण के तेज से जंघायें, पृथ्वी के तेज से दोनों नितम्ब, ब्रह्मा के तेज

से दोनों पैर, सूर्य के तेज से पाँव की अंगुलियां, बसुओं के तेज से हाथों की अंगुलियां, कुबर के तेज से नासिका, प्रजापति के तेज से दाँत, अग्नि के तेज से तीनों नेत्र, सन्ध्याओं के तेज से भ्रकुटी, वायु के तेज से दोनों कर्ण तथा इसी प्रकार अन्य सभी देवताओं के तेज से शिवा (दुर्गाजी) प्रकट हुईं ॥१४-१८॥ इस प्रकार सब देवताओं के तेज से उत्पन्न हुई उस देवी को देखकर महिषासुर से सताये हुए सब देवता प्रसन्न

रुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः॥१५॥ ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा। वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका।१६। तस्यास्तु दंताः संभूताः प्राजापत्येन तेजसा। नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा॥१७॥ भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च। अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा॥१८॥ ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्। तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥१९॥ शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्। चक्रञ्च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः॥२०॥ शंखञ्च वरुणः शक्तिं ददौ

हो गये।१९। फिर शिवजी ने अपने त्रिशूल में से एक त्रिशूल निकालकर और भगवान कृष्ण ने अपने चक्र में से एक चक्र निकालकर उस दुर्गा को दिया।२०। गरुड़ ने शंख ,अग्नि ने शक्ति वायु ने धनुष और वाणों से भरे

हुए तरकस दोनों भेंट किये ॥२१॥ देवराज इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र निकाल कर तथा अपने ऐरावत हाथी का घंटा निकाल कर दिया ॥२२॥ धर्मराज ने अपने कालदंड में से दंड, वरुण ने पाश, प्रजापति ने रुद्राक्ष की माला तथा ब्रह्माजी ने कमण्डलु दिया ॥२३॥ सूर्य ने अपनी किरणें देवी के तमाम रोम कूपों में भर दीं, काल ने खड्ग और सुन्दर ढाल अर्पण की ॥२४॥ क्षीर सागर ने सुन्दर हार तथा नवीन वस्त्र,

तस्यै हुताशनः । मारुतो दत्तवाँश्चापं वाणपूर्णे तथेषुधी ॥२१॥ वज्रमिन्द्रःसमुत्पाट्य कुलिशादमराधिपः।ददौ तस्यै सहस्राक्षोघण्टामैरावताद् गजात्॥२२॥कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ। प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम्॥२३॥ समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः। कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलं ।२४। क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे। चूड़ामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च॥२५॥ अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु। नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥२६॥ अंगुलीयकरत्नानि

दिव्य चूड़ामणि कुंडल, कड़े, शुभ्र अर्द्धचन्द्र, सब भुजाओं के लिए बाजूबन्द, पैरों के लिए सुन्दर नूपुर और गले के लिए उत्तम कंठा, अंगुलियों के लिए रत्न जड़ित अंगूठियाँ प्रदान कीं। विश्वकर्मा ने अति-निर्मल

फरसा भेंट किया ।।२५-२७।। तथा अनेक तरह के अस्त्र और अभेद्य कवच दिया एवं सुन्दर खिल हुए कमल की दो माला सिर और गले में धारण करने के लिए और कमल का सुन्दर फूल समुद्र ने भेंट किया और हिमालय ने सिंह सबारी के लिए तथा नाना प्रकार के रत्न दिये ।।२८-२९।। कुबेर ने मदिरा से भरा हुआ

समस्तास्वंगुलीषु च । विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुञ्चातिनिर्मलम् ।।२७।। अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् । अम्लानपंकजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ।२८। अददज्जलधिस्तस्यै पंकजञ्चा-तिशोभनम् । हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानिच ।।२९।।ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः । शेषश्च सर्वनागेशो महामणि-विभूषितम् ।।३०।। नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् । अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ।३१। सम्मानिता ननादोच्चैः

पात्र दिया और इस पृथ्वी को धारण करने वाले सम्पूर्ण नागों के स्वामी शेषनाग ने महामणियों से शोभित ।।३०।। एक नाग हार दिया । इस प्रकार अन्य देवताओं ने भी आभूषण और आयुध देकर देवी का सम्मान किया,तदुपरान्त देवी ने जोर से बार-बार अट्टहास किया,जिसकी घोर गर्जना से आकाशमण्डल गूंज उठा ।।३१-३२।। देवी की इस प्रकार से की हुई सिंह-गर्जना कहीं न समा सकी और उसकी ऐसी प्रतिध्वनि हुई

कि उससे सारे लोक तथा समुद्र कम्पायमान हो गये।३३। सारी पृथ्वी तथा पर्वत चलायमान हो गये, तब सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होकर उस सिंह पर बैठी हुई देवी की जय-जयकार करने लगे ॥३४॥ मुनियों ने भी भक्ति-भाव से नत-मस्तक होकर देवी की स्तुति की, दैत्यों ने सारी त्रिलोकी को क्षुब्ध देखकर ॥३५॥

साट्टहासं मुहुर्मुहुः। तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः।३२।
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्। चुक्षुभुःसकला लोकाः
समुद्राश्च चकम्पिरे ॥३३॥ चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च मही-
धराः। जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम्॥३४॥ तुष्टुवु-
र्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः। दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्य-
ममरारयः ॥३५॥ सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः। आः
किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः॥३६॥ अभ्यधावत तं शब्द-
मशेषैरसुरैर्वृतः। स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा।३७।

अपनी सम्पूर्ण सेना तैयार की और शस्त्र लेकर उठे। उस समय महिषासुर क्रोध में भरकर बोला यह क्या हो रहा है॥३६॥ इस प्रकार कहकर सम्पूर्ण असुरों के साथ उस घोर शब्द की तरफ दौड़ा और उसने उस देवी को देखा जो तीनों लोकों में व्याप्त थी, जिसके पैरों के दबाव से पृथ्वी दब रही थी.मुकुट जिसके आकाश को छू रहे थे, जिसके धनुष की टंकोर से सम्पूर्ण पाताल काँप रहे थे ॥३७-३८॥ जिसकी सहस्र

भुजाओं से सारी दिशायें व्याप्त हो रही थीं। तदनन्तर ऐसी देवी के साथ उन असुरों ने युद्ध छेड़ दिया ।३९।। तरह तरहके शस्त्रास्त्रके प्रहारसे दशों दिशायें देदीप्यमान हो गईं, फिर महिषासुरका चिक्षुर नामक सेनानायक ।।४०।। संग्राम करने लगा और चामर नाम का दैत्य बलवान चतुरंगिणी सेना लेकर और

पादाक्रांत्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्। क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम्।।३८।। दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्। ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ।।३९।। शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्। महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराऽऽख्यो महासुरः।।४०।। युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरंगबलान्वितः रथानामयुतैःषड्भिरुदग्राख्यो महासुरः।४१। अयुध्यतायुतानाञ्च सहस्रेण महाहनुः। पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ।।४२।। अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे। गजवाजिसह-

उदग्र नाम का दैत्य साठ हजार रथों को लेकर युद्ध करने लगा ।।४१।। एक करोड़ रथ के साथ महाहनु और पाँच करोड़ रथ की सेना लेकर असिलोमा नामक दैत्य और साठ लाख रथों की सेना तथा हजारों हाथी-घोड़ाओं की नाना प्रकार की सेना लेकर बाष्कल नाम का दैत्य युद्ध करने लगा ।।४२-४३।। विडाल

नाम के दैत्य ने एक करोड़ पचास लाख सेना सहित युद्ध किया ।।४४।। अन्य भी बहुत से असुर रथ हाथी और घोड़ा लेकर देवी के साथ संग्राम में जुट गये, फिर महिषासुर भी करोड़ों रथ हाथी तथा घोड़ों की सेना

स्त्रौघैरनेकैः परिवारितः ।।४३।। वृतो रथानां कोटचा च युद्धे तस्मि-न्नयुध्यत । बिडालाख्योऽयुतानाञ्च पञ्चाशद्भिरथायुतः ।।४४।। युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः । अन्ये च तत्रायुतशो रथ-नागहयैर्वृताः ।।४५।। युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः। कोटि-कोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ।।४६।। हयानाञ्च वृतो युद्धे त-त्राभून्महिषासुरः । तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ।।४७ ।। युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ।।४८।। देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुम् प्रच-क्रमुः । सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका।४९।लील-

के साथ युद्धस्थल में आ पहुँचा, वे दैत्य तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूशल खंग फरसा, पट्टिस आदि अस्त्र-शस्त्रों से देवी के साथ युद्ध करने लगे । कोई शक्ति से तथा कोई पाशादि से प्रहार करते थे ।।४५-४८।।

बहुत से असुर तलवार से मारने को दौड़े, तब उस चण्डिका देवी ने अपने शस्त्रास्त्र बरसा कर दैत्यों के शस्त्र खेल ही में काट डाले। देवर्षियों द्वारा स्तुति की हुई प्रसन्न ।४६-५०। देवी दैत्यों के शरीरों पर अस्त्र शस्त्र बरसाने लगी और देवी का वाहन सिंह भी क्रोधित होकर अपनी गर्दन के बाल हिलाता हुआ दैत्य-सेना में वन में लगी हुई अग्नि के समान घूमने लगा और संग्राम में लड़ती हुई अम्बिका देवी ने जितने श्वांस

यैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी। अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥५०॥ मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी। सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी ॥५१॥ चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः। निःश्वासान्मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥५२॥ त एवसद्यः सम्भूता गणाःशतसहस्रशः। युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ।५३। नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः। अवादयन्त पटहान् गणाःशंखाँस्तथापरे ॥५४॥ मृद-

छोड़े ।५१-५२। वे श्वांस शीघ्र ही सैकड़ों-हजारों गण बन गये और भिन्दिपाल, फरसा, पट्टिश आदि शस्त्रों से युद्ध करने लगे ॥५३॥ देवी की शक्ति को पाकर वे गण असुरों का संहार करने लगे और उस युद्धोत्सव में ढोल, शंख, मृदंग बजाने लगे, फिर देवी ने त्रिशूल, गदा और शक्ति की वर्षा से तथा खंग आदि से सैकड़ों दैत्यों को मार डाला तथा अन्य असुरों को घंटों की आवाज से विमोहित कर दिया ।५४-५५-५६

कितने ही असुरों को पास से बांधकर पृथ्वी पर खेंच लिया तथा कितने ही असुरों के खंग के प्रहार से टुकड़े कर दिये ॥५७॥ कितने ही गदा की मार से पृथ्वी पर लोटने लगे। कितने ही मूसल की चोट खाकर मुखसे रुधिर बहाने लगे ॥५८॥ कितने ही हृदय में शूल लगने के कारण आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और

ङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन्युद्धमहोत्सवे। ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥५५॥ खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान्। पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥५६॥ असुरान्भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत्। केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥५७॥ विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते। वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥५८॥ केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाःशूलेन वक्षसि। निरन्तराःशरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे।५९। सेनानुकारिणः प्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः। केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥६०॥ शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदा-

कितने ही युद्ध भूमि में बाणों से मर गये ।५९। देवताओं को कष्ट देने वाले कितने ही असुर मरने लगे कितने ही की बाहु और गर्दन कटकर छिन्न-भिन्न हो गई ।६०। कोई के शिर कट गये कोई बीच में से काट

डाले गये, कितने ही महाअसुर जंघा कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़े ।६१। कितने ही को एक भुजा, एक आंख, एक पाँव काटकर दो-दो टुकड़े कर दिये, कितने ही असुर मस्तक कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़ते थे और फिर उठ बैठते थे ।६२। रुण्डों ने हाथ में शस्त्र लेकर युद्ध किया । बहुत से असुर बाजों की

रिताः विच्छिन्नजंघास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥६१॥ एकबाह्वक्षिचरणाःकेचिद्देव्या द्विधा कृताः । छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ।६२। कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः । ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ।६३। कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः । तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ।६४। पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा । अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ।६५। शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः । मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६६॥ क्षणेन तन्महासै-

लय के साथ नाचते थे ।६३। कितने ही असुरों के रुण्ड जिनके हाथ में खडग शक्ति और यष्टि हैं देवी से ठहर-ठहर ! पुकार रहे थे ।६४। वह युद्धस्थल हाथी-घोड़ों के गिर जाने से ऐसा पट गया था कि रास्ता बन्द होगया ।६५। असुर-सेना के बीच में पड़े हुए हाथी-घोड़ों और असुरों के शरीर से खून की नदियां बहने लगीं ।६६। अम्बिका देवी ने उस महाअसुर-सेना का क्षणभर में नास कर दिया जैसे तृण और काष्ठ के ढेर में

लगी हुई अग्नि उसे जला डालती है ।६७। वह सिंह भी महानाद करता हुआ गर्दन के बाल हिलाता हुआ ऐसा मालूम होता था, मानो शत्रु के प्राण खोज रहा है। उन असुरों के साथ युद्ध करने वाले देवी के गणों पर देवता प्रसन्न होकर आकाश में से पुष्प बरसाने लगे ॥६८-६९॥

न्यमसुराणां तथाम्बिका । निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६७॥ स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेशरः । शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥६८॥ देव्या गणैश्च तैस्तत्र, कृतं युद्धंमहासुरैः । यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ॐ॥६९॥

* अथ तृतीयोऽध्यायः *

अथ ध्यानम् । ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम् । हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं, देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

ऋषि बोले ।१। सेनापति चिक्षुर अपनी सेना को इस प्रकार नष्ट होती हुई देखकर क्रोधित होकर देवी के साथ युद्ध करने को गया ।२। वह असुर युद्ध में देवी के ऊपर बाणों की इस प्रकार वर्षा करने लगा, जिस प्रकार मेरु-पर्वत की चोटी पर बादल जल बरसाते हैं ।३। तब देवी ने लीलासे ही अपने शरों से चिक्षुर के शरों को काट दिया और उसके सारथी तथा घोड़ों को मार दिया ।४। और तुरन्त ही उसके धनुष को

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥ निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥२॥ स देवीं शर-
वर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः । यथा मेरुगिरेःशृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥३॥
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् । जघान तुरगान्बा-
णैर्यन्तारञ्चैव वाजिनाम् ॥४॥ चिच्छेद च धनुःसद्यो,ध्वजं चा-
तिसमुच्छ्रितम् । विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥५॥
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वोहतसारथिः । अभ्यधावत तां देवीं
खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥६॥ सिंहमाहत्य खड्गेनतीक्ष्णधारेण मूर्द्ध नि-

और ऊँची ध्वजा को काट दिया, उसके धनुष के कटते ही उसके अंगों को बाणों से बेध दिया ।५। पश्चात् धनुष, रथ, घोड़े तथा सारथी के नष्ट हो जाने पर वह असुर ढाल-तलवार लेकर उस देवी के सम्मुख दौड़ा

।६। और तेज धार वाले अपने खंग मे सिंह के मस्तक पर आघात करके देवी की बायीं भुजा पर बड़े वेग से तलवार मारी ।।७।। हे राजन् ! देवी की भुजा पर लगने से तलवार टूट गई फिर उसने क्रोध से लाल नेत्र करके त्रिशूल उठाया ।।८।। और उस महाअसुर ने उसे भद्रकाली देवी को ओर फेंका, आकाश से आते हुए

आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ।७।तस्याः खड्गो भुजम्प्राप्य पफाल नृपनंदन । ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ।८। चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः । जाज्वल्यमानं तेजोभी, रविबिम्बमिवाम्बरात् ।।९।। दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत । तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ।।१०।। हते तस्मिन् महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ । आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ।।११।। सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् । हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ।१२। भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा

सूर्य के समान उस अत्यन्त प्रकाशमान शूल को देखकर देवी ने अपना त्रिशूल छोड़ा, जिसने उसके त्रिशूल के सैकड़ों टुकड़े कर दिये और उस असुर को भी मार दिया ।।९-१०।। जब महिषासुर का सेनापति चिक्षुर मर गया तब देवताओं को कष्ट देने वाला असुर चामर हाथी पर चढ़कर आया ।११। उसने देवी पर शक्ति छोड़ी, उसे अम्बिका ने शीघ्र ही हुँकार शब्द से निस्तेज करके पृथ्वी पर पटक दिया ।।१२।। शक्ति के टूट

कर गिर जाने पर चामर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपना त्रिशूल चलाया, भगवती ने उसको बाणों से छेद डाला ॥१३॥ इसके बाद भगवती का सिंह उछल कर हाथी पर बैठ गया और उस असुर के साथ युद्ध करने लगा ॥१४॥ फिर वे दोनों युद्ध करते-करते हाथी के ऊपर से नीचे पृथ्वी पर गिर पड़े और अत्यन्त

क्रोधसमन्वितः । चिक्षेप चामरःशूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ।१३। ततःसिंहःसमुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः । बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१४॥ युद्धचमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ । युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥१५॥ ततो वेगात्खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा । कर प्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥१६॥ उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः । दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥१७॥ देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् । वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथा-

क्रोधित होकर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे । फिर सिंह बड़े वेग से आकाश की तरफ उछला और पृथ्वी पर गिरते समय उसने अपने पंजों की मार से चामर का शिर अलग कर दिया ॥१६॥ देवी ने उदग्र को शिला, वृक्ष आदि से मार डाला तथा कराल के दाँत, घूँसा और लात आदि से प्राण ले लिये ॥१७॥ फिर

देवी ने क्रोधित होकर गदा की मार से उद्धत को मार दिया। वाष्कल को भिन्दिपाल से, ताम्र और अन्धक को वाणों से ॥१७॥ और त्रिनेत्र वाली देवी ने त्रिशूल से उग्रास्य, उग्रवीर्य, महाहनु का संहार कर दिया ॥१९॥ खंग से विडाल का शिर काट दिया दुर्धर व दुर्मुख दोनों को वाणों की मारसे यमपुर पहुँचा

न्धकम् ॥१८॥ उग्रास्यमुग्रवीर्यञ्च तथैव च महाहनुम्। त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१९॥ विडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः। दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥२०॥ एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः। माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान्गणान् ॥२१॥ कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्। लांगूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ॥२२॥ वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च। निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥२३॥ निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः। सिंहं हन्तुं

दिया ॥२०॥ इस प्रकार अपनी सेना के हार जाने पर महिषासुर भैंसे का रूप धारण करके देवी के गणों को डराने लगा ॥२१॥ कितने ही गणों को मुख के प्रहार से, कितने ही को खुरों से, कितने ही को पूँछ की फटकार से, कितने ही को सींगों की चोटों से, कितने ही को तेज दौड़ने से, कितने ही को मुख की गर्जना से, कितने ही को चक्कर देकर, कितने ही को श्वास की वायु से महिषासुर ने भूमि पर गिरा दिया ।२२-२३।

इस प्रकार गणों की सेना के गिर जाने पर वह असुर महादेवी के सिंह को मारने को दौड़ा, इस पर अम्बिका कुपित हो गई ॥२४॥ फिर बलशाली असुर भी क्रोधित होकर खुरों से पृथ्वी को खोदने तथा ऊँचे २ पर्वतों को सींगों से फेंकने लगा और गर्जना करने लगा ॥२५॥ उसके तीव्र भ्रमण से पृथ्वी फटने

महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥२४॥ सोऽपि कोपान्महावीर्यःखुरक्षुण्णमहीतलः। शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥२५॥ वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत। लांगूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः॥२६॥ धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः। श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः॥२७॥ इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्। दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥२८॥ सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बब-

लगी। और पूँछ के झकोरने से समुद्र का पानी चारों ओर फैलने लगा ॥२६॥ सींगों के आघात से मेघों के टुकड़े २ हो गये और श्वास की वायु से आकाश में उड़े हुए सैंकड़ों पर्वत नीचे गिरने लगे ॥२७॥ इस प्रकार क्रोधाग्नि में भरकर हमला करने वाले असुर को वह चण्डिका देवी देखकर उसके संहार करने के लिये क्रोधित होगई ॥२८॥ देवी ने पाश फेंककर उस असुर को बाँध लिया, बँध जाने पर असुर ने भैंसे

का रूप त्याग दिया ॥२६॥ और शीघ्र ही सिंह का रूप बनाकर प्रकट हुआ, जैसे ही अम्बिका उसका शिर काटने को तैयार हुई तैसे ही वह तलवार लेकर मनुष्य के रूप में दिखाई देने लगा ॥३०॥ फिर देवी ने बाण बरसा कर ढाल-तलवार सहित उस मनुष्य को काट दिया, वह तत्काल ही फिर हाथी के रूप में

न्ध महासुरम् । तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥२६॥ ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः । छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥३०॥ तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः । तं खड्गचर्मणा सार्धं,ततः सोऽभून्महागजः ॥३१॥ करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च । कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥३२॥ ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः । तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३३॥ ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् । पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥३४॥ ननर्द

प्रकट हुआ ॥३१॥ और अपनी सूँड़ से भगवती के महान् सिंह को खींचने लगा, तब देवी ने अपने खंग से उसकी सूँड़ को काट डाला ॥३२॥ इसके बाद महाअसुर ने फिर भैंसे का रूप बना लिया और सब चराचर जीवों सहित त्रिलोकी के मनुष्यों को पहले की भांति कष्ट पहुँचाने लगा ॥३३॥ तब क्रोधित हुई

जगत्माता उत्तम मदिरा का पान करने लगी तथा लाल-लाल नेत्र करके बार-बार हँसनेलगी ॥३४॥ शक्ति सेमदो न्मत्तहुआ असुर भी घोर गर्जना करने लगा और अपने सींगों से चण्डिकाजी की तरफ पर्वतों को फेंकना शुरू किया ॥३५॥ फिर उस देवी ने अपने वाण समूहों से उन पर्वतों को चूर्ण कर दिया और लड़खड़ाते हुए वचनों से मद के पीने से रक्त-मुख वाली देवी कहने लगी ॥३६॥ देवी बोली ॥३७॥

चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः । विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां-प्रति भूधरान् ॥३५॥ सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः । उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥३६॥ देव्युवाच ॥३७॥ गर्ज-गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिवाम्यहम् । मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जि-ष्यन्त्याशु देवताः ॥३८॥ ऋषिरुवाच ॥३९॥ एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम् । पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥४०॥ततःसोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः । अर्धनिष्क्रान्त

अरे मूर्ख : मैं जब तक सुरापान करती हूँ तब तक पल भर के लिये तू गर्जले । फिर मैं तुझे इसी जगह पर मार दूँगी, फिर यहां शीघ्र देवता ही गर्जना करेंगे ॥३८॥ ऋषि बोले ॥३९॥ इस प्रकार कह-कर देवी उछल कर उस असुर के ऊपर चढ़ गई और अपने पैरों से उसे दबाकर त्रिशूल से उसके कण्ठ को काटने लगी ॥४०॥ फिर वह देवी के पैरों से दवा हुआ असुर भी अपने मुख की तरफ से आधा

बाहर निकलने लगा, किन्तु देवी ने अपने बल से उसे रोक दिया ॥४१॥ आधा निकला हुआ महा-
असुर जब देवी से संग्राम करने लगा तो देवी ने उसका सिर अपनी तलवार से काट दिया ॥४२॥
अनन्तर हा-हाकार करती हुई सम्पूर्ण दैत्यों की सेना के नष्ट हो जाने पर सम्पूर्ण देवता बड़े प्रसन्न हुए

एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥४१॥ अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः । तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥४२॥ ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् । प्रहर्षञ्च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४३॥ तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं, सह दिव्यैर्महर्षिभिः । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४॥

॥४३॥ उस समय दिव्य महर्षियों के साथ सब देवता देवी की स्तुति करने लगे । गन्धर्वपति गाने लगे
तथा अप्सरायें नाच करने लगीं ॥४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

* अथ चतुर्थोऽध्यायः *

अथ ध्यानम्—ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ।

ऋषि बोले ॥१॥ देवी द्वारा अत्यन्त पराक्रमी उस अधम महिषासुर तथा उसकी सेना के मारे जाने पर इन्द्रादि सब देवता प्रसन्न होकर शिर, कंठ और मस्तक झुकाकर अनेक प्रकार की वाणियोंसे देवी की स्तुति करने लगे ॥२॥ जिस देवी की शक्ति से यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है, जो सब देवताओं

सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं, ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥ॐऋषिरुवाच॥१॥ ॐशक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये, तस्मिन् दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या । तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा, वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः॥२॥ देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या, निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या । तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताःस्म विदधातु शुभानि सा नः ॥३॥ यस्याः प्रभावम-

की शक्ति की मूर्ति हैं, जो समस्त देवता तथा महर्षियों से पूजी जाती हैं, उन अम्बिका देवी को हम भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं, वह हमारा कल्याण करें ॥३॥ जिसके अतुल प्रभाव और शक्ति का ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी वर्णन नहीं कर सकते है, वही चण्डिका देवी जगत का पालन करें तथा अशुभ भय का नाश करने के लिये तत्पर हों ॥४॥ पुण्यवानों के गृह में आप लक्ष्मी रत्न हों, पापात्माओं के

लिये विपत्ति रूप, बुद्धिमानों के हृदय में बुद्धिरूप, श्रेष्ठ पुरुषों में श्रद्धारूप और सत्कुल में पैदा होने बालों के आप लज्जा स्वरूप हो। हे देवी। हम आपको प्रणाम करते हैं, इस संसार का पालन करिये ॥३॥ हे देवी। आपके इस अचिन्त्य रूप का, दैत्य के नाश करने वाली शक्ति का, असुरों के साथ

तुलं भगवाननन्तो, ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च। सा चण्डिकाऽखिलजगत्परिपालनाय, नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥४॥ या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्व लक्ष्मीः, पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः। श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा, तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥५॥ किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्, किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि। किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि, सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥६॥ हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा। सर्वाश्रयाखिलमिदं

युद्ध में आपके चरित्र को हम किस प्रकार वर्णन कर सकते हैं ॥६॥ त्रिगुणमयी होने पर भी सारे जगत की कारण हो, दोष आप में ज्ञात नहीं होते, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी आप का पार नहीं पाते हैं, सबको आपका ही आश्रय है, यह सारा संसार आपका अंश मात्र है, आप सबकी आदि शक्ति अव्याकृता तथ

परम प्रकृति हो ॥७॥ हे देवी ! वह स्वाहा आप ही हैं, जिसके उच्चारण से सम्पूर्ण यज्ञों में सब देवता तृप्त होते हैं और वह स्वधा भी आप ही हैं जिसके कारण पितृगणों की तृप्ति हो जाती है ॥८॥ हे भगवती देवी ! आप मुक्ति का कारण, अचिन्त्य ब्रह्मज्ञान रूपी महाव्रत हो, राग-द्वेष रहित, तत्ववेत्ता, जितेन्द्रिय

जगदंशभूत मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥७॥ यस्याःसमस्तसुरता समुदीरणेन, तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि। स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुरुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ।८। या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः । मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥९॥ शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् । देवी त्रयी भगवती भवभावनाय, वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥१०॥ मेधासि देवि

तथा मोक्ष की चाहना करने वाले मुनि आपका अभ्यास करते हैं, इस कारण आप सर्वोपरि हैं ॥९॥ शब्द रूप से आप पवित्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा ओंकार युक्त सुन्दर पदों के पाठ वाले सामवेद की आश्रय वी हे वीदे। वेदत्रयी तथा भगवती आप ही हो, प्राणो मात्र की आजीविका आप हो तथा संसार का कष्ट दूर

करने वाली आप हो ॥१०॥ हे देवी ! सारे शास्त्रों का ज्ञान कराने वाली मेधाशक्ति आप ही हैं, कठिन संसार से पार लगाने वाली नौकारूपी दुर्गा देवी भी आप ही हैं ! कैटभ के संहारक भगवान विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी एवं शिवजी से सम्मान पाने वाली गौरी रूप आप ही हैं ॥११॥ आप

विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा । श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११॥ ईशत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् । अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥१२॥ दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकरालमुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः । प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१३॥ देवि प्रसीद

मन्द-मन्द मुस्कराते हुए, पूर्णचन्द्र के सदृश निर्मल तथा स्वर्ण के समान कान्तमान मुख को देखकर भी क्रोधित हो महिषासुर ने सहसा आपके ऊपर प्रहार किया, यह कैसे आश्चर्य की बात है ॥१२॥ हे देवि ! जब यही मुख क्रोधयुक्त होने के कारण उदय चन्द्र के समान लाल और टेढ़ी भृकुटी के कारण भयंकर प्रतीत हुआ तो भी उसे देखकर महिषासुर तुरन्त नहीं मरा । यह उससे भी अधिक आश्चर्य की बात है

क्योंकि क्रोधित यमराज को देखकर कोई जीवित नहीं रह सकता है ।।१३।। हे देवि ! संसार का कल्याण करने के लिये आप प्रसन्न हूजिये क्योंकि आपके कुपित होने पर तो शीघ्र ही कुलों का नाश हो जाता है, आपने महिषासुर की विशाल सेना को तत्काल नष्ट कर दिया, इस कारण यह अनुभव हुआ है ।।१४।।

परमा भवती भवाय सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि । विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ।।१४।। ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः । धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ।।१५।। धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति । स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ।।१६।। दुर्गे स्मृता हरसि भीति-

सदा कल्याण करने वाली देवी ! जिन पर प्रसन्न रहती हैं, संसार में वे ही सम्मान, धन और यश के भागी हैं, वे ही धर्मवीर हैं, वे ही धन्य हैं तथा वे ही स्त्री, पुत्र, नौकर आदि से परिपूर्ण रहते हैं ।।१५।। हे देवि ! ऐसे ही सज्जन पुरुष आदर सहित सम्पूर्ण धार्मिक कृत्य सदा करते रहते हैं, आपकी कृपा से ही उनको स्वर्ग की प्राप्ति होती है, इसलिये हे देवि ! तीनों लोकों में उत्तम फल देने वाली आप ही हैं ।।१६।।

हे देवी ! जो आपका ध्यान करते हैं उनके सम्पूर्ण भय नष्ट हो जाते हैं और जो स्वस्थ पुरुष आपका स्मरण करते हैं उनकी बुद्धि तीव्र हो जाती है । दरिद्रों के दुःख और भय को दूर करने वाला आपके सिवाय और कौन है; सब प्राणियों की भलाई करने के लिये निश्चय ही आप दया से पूर्ण रहती हैं ॥१७॥

मशेषजन्तोः स्वस्थैःस्मृता मतिमतीव शुभां ददासि । दारिद्र्यदुःख-भयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥१७॥ एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् । संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१८॥ दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् । लोकान्प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१९॥ खड्गप्रभानिकरविस्फु-

हे देवि ! असुरों का वध करने से संसार सुखी हो तथा नरक में वास करने के लिये ये राक्षस बहुत समय तक भले ही पाप करते रहें किन्तु युद्ध में मरने पर उनको स्वर्ग की प्राप्ति हो, यही समझकर आप राक्षसों का हनन करती हैं ॥१८॥ हे देवि ! सम्पूर्ण राक्षस आपकी दृष्टिपात से ही भस्म हो सकते थे, फिर आपने शस्त्र का प्रहार क्यों किया, क्योंकि शस्त्र के प्रहार से उनको स्वर्ग मिलेगा, इस प्रकार शत्रु के प्रति भी

आपके विचार कितने उत्तम हैं ॥१९॥ आपके खड्ग की उग्र प्रभा पुञ्ज और त्रिशूल के अग्रभाग की चमक से भी शत्रुओं के नेत्रों की ज्योति नष्ट नहीं हुई, क्योंकि किरणों से शोभित अर्द्ध-चन्द्रमा के सदृश आपके मुख को वे देख रहे थे ॥२०॥ आपके स्वभाव से दुराचारियों का बुरा वर्ताव नष्ट हो जाता है

रणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् । यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०॥ दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः । वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२१॥ केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र । चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२२॥ त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाश-

तथा आपका रूप अचिन्त्य है, आपकी समता दूसरे से नहीं हो सकती, आपका बल और पराक्रम उन राक्षसों का नाश करने वाला है, जिनने देवताओं के पौरुष को भी नष्ट कर दिया था। इस प्रकार शत्रुओं पर भी आपकी दया प्रकट होती है ॥२१॥ हे वरदे देवि ! आपके इस पराक्रम और शत्रुओं को भयभीत करने वाले एवं मनोहर रूप की तुलना किसी के साथ नहीं हो सकती है। हृदय में कृपा, किन्तु संग्राम में कठोरता यह बातें तीनों लोकों में आप में ही देखी जाती हैं ॥२२॥ संग्राम में शत्रुओं का हनन कर

त्रिलोकी की रक्षा आपने की है तथा उन मरे हुए शत्रुओं को स्वर्ग लोक में स्थान दिया है, सभी उन्मत्त दैत्यों से हमें अभय किया है, आपको नमस्कार करते है ॥२३॥ हे अम्बिके देवि ! शूल, खंग, घण्टा की ध्वनि तथा धनुष की टंकोर से हमारी रक्षा करिये ॥२४॥ हे चण्डिके ! पूर्व, पश्चिम, दक्षिण चारों दिशाओं

नेन त्रातं त्वया समरमूर्द्धनि तेऽपि हत्वा। नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२३॥ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके। घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च ॥२४॥ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्याञ्च चण्डिके रक्ष दक्षिणे। भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२५॥ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते। यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्माँस्तथा भुवम् ॥२६॥ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके। करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥२७॥ ऋषिरुवाच ॥२८॥

में अपने शूल को फिराकर हमारी रक्षा करिये ॥२५॥ त्रिलोकी में आपके सौम्य तथा भयंकर रूप विचरते रहते है, उनसे भी हमारी और विश्व की रक्षा करिये ॥२६॥ हे अम्बिके ! आपके कर-कमल में खंग, शूल, गदा आदि शस्त्र शोभा पा रहे हैं, उनसे आप हमारी रक्षा करें ॥२७॥ ऋषि बोले ॥२८॥ इस

प्रकार जब देवताओं ने जगत माता दुर्गा की नन्दन वन के फूलों और गन्ध, चन्दन से पूजन और स्तुति की तथा भक्ति-भाव से दिव्य धूप अर्चन की, तब देवी ने प्रसन्न मुख होकर विनम्र देवताओं से कहा ॥२९-३०॥ देवी बोली ॥३१॥ हे देवताओ! मुझसे मनवांछित वर मांगो ॥३२॥ देवता बोले ॥३३॥ आपने

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः। अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२९॥ भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता। प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥३०॥ देव्युवाच ॥३१॥ व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥३२॥ देवा ऊचुः ॥३३॥ भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते। ३४। यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः। यदि चापि वरो देयस्त्वयाऽस्माकं महेश्वरि ॥३५॥ संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः। यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥३६॥ तस्य

सब कुछ दिया, अब कुछ शेष नहीं है ॥३४॥ क्योंकि आपने हमारे शत्रु महिषासुर का संहार कर दिया, फिर भी हे माहेश्वरी। यदि आप हमें वरदान देना चाहती हैं ॥३५॥ तो आप हमारे स्मरण मात्र पर हमें दर्शन देकर हमारे कष्टों को दूर कर एवं जो मनुष्य आपकी स्तोत्रों से स्तुति करें, उसके धन, ऐश्वर्य,

स्त्री आदि सम्पत्ति की वृद्धि करें और हे अम्बिके ! हम पर आप सदा प्रसन्न रहें ॥३६-३७॥ ऋषि बोले ॥३८॥ हे राजन् ! देवताओं ने जब संसार तथा अपने कल्याण के लिए देवी को इस प्रकार प्रसन्न किया तो भद्रकाली देवी 'ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान होगई ॥३९॥ हे भूप । संसार का कल्याण करने वाली

वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम्। वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३७॥ ऋषिरुवाच ॥३८॥ इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः। तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३९॥ इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा। देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥४०॥ पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथा भवत्। वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥४१॥ रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी। तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ ह्रीं ॐ ॥४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वंतरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

देवी जिस प्रकार देवताओं के अंगोंसे प्रकट हुई थी वह सब मैंने आपसे कहा ॥४०॥ फिर दुष्ट दैत्यों (शुम्भ और निशुम्भ) के मारने के लिए तथा संसार के कल्याण के लिए देवताओं का उपकार करने वाली देवी पार्वती के अंग से जिस प्रकार उत्पन्न हुई थी, वह भी सब कथा कहता हूँ सो सुनिये ॥४१-४२॥

* अथ पंचमोऽध्यायः *

ॐ अस्य श्री उत्तरचरित्रस्य रुद्रऋषिः, महासरस्वती देवता अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजं सूर्यस्तत्त्वम् सामवेदः स्वरूपं महासरस्वतीप्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रजपे (पाठे) विनियोगः ॥

अथ ध्यानम्—ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् । गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महापूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥

ॐ क्लीं ऋषिरुवाच ॥१॥ पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शची-

ऋषि बोले ॥१॥ प्राचीन समय में शुम्भ-निशुम्भ राक्षसों ने मद बल के अहंकार में आकर इन्द्र के तीनों लोकों का राज्य और यज्ञ भाग छीन लिया था ॥२॥ और इसी प्रकार वे दोनों सूर्य

प्रकार महा असुरों द्वारा वे देवता अधिकार विहीन होकर अपराजित देवी को स्मरण करने लगे ॥५॥ और अग्नि के अधिकार भी छीन लिये, तथा सब देवताओं को हराकर राज्यच्युत कर दिया ॥४॥ इस द्रचमा, कुबेर, धर्मराज ओर वरुण के अधिकारों को भी छीनकर आप प्रयोग करने लगे ॥३॥ पवन

पतेः । त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च, हृता मदबलाश्रयात् ॥२॥ तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् । कौबेरमथ याम्यं च, चक्राते वरुणस्य च ॥३॥ तावेव पवनर्द्धि च, चक्रतुर्वह्निकर्म्म च । ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥४॥ हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः । महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥५॥ तयास्माकं वरो दत्तो, यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः । भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥६॥ इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् । जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥७॥ देवा ऊचुः

और सोचा कि देवी ने हमको वरदान दिया है कि संकट काल में स्मरण करने पर सम्पूर्ण संकट तुरन्त नष्ट कर दूंगी ॥६॥ ऐसा निश्चित करके वे देवता हिमालय पर्वत पर गये और विष्णु माया देवी की

स्तुति करने लगे ॥७॥ देवता बोले ॥८॥ देवी, महादेवी, शिवा, प्रकृति, भद्रा को हम सब नमस्कार करते हैं ॥९॥ रौद्रा, नित्या, गौरी, धात्री, ज्योत्स्ना, चन्द्ररूपिणी, सुखरूपा देवी को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥१०॥ कल्याणी को प्रणाम करते हैं। वृद्धरूपा, सिद्धरूपा, नैऋति, राजाओं की लक्ष्मी तथा

॥८॥ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताःप्रणताः स्म ताम् ॥९॥ रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः। ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥१०॥ कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः। नैऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥११॥ दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै। ख्यात्यै तथैव कृष्णायै, धूम्रायै सततं नमः ॥१२॥ अति सौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः। नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥१३॥ या देवी सर्वभूतेषु, विष्णुमायेति शब्दिता।

शर्वाणी देवी को हमारा सतत् नमस्कार है ॥११॥ दुर्गा, सारा सर्व कारिणी, ख्याति, कृष्णा, धूम्रा देवी को सतत् नमस्कार करते हैं ॥१२॥ अत्यन्त सौम्य तथा अति रौद्र स्वरूपा को नत-मस्तक हो नमस्कार करते हैं, जगत में प्रतिष्ठित कृत देवी को नमस्कार करते हैं ॥१३॥ जो देवी सब भूतों में विष्णु

माया नाम से कही जाती है उसको नतस्कार है ॥१४॥ उसको नमस्कार है ॥१५॥ उसको वारम्बार नमस्कार है ॥१६॥ जो देवो सम्पूर्ण प्राणियों में चेतना नाम की कही जाती है उसको नमस्कार है ॥१७॥ उसको नमस्कार है ॥१८॥ उसको नमस्कार है ॥१९॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में बुद्धिरूप से स्थित है

नमस्तस्यै ॥१४॥ नमस्तस्यै ॥१५॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥ या देवी सर्वभूतेषु, चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै ॥१७॥ नमस्तस्यै ॥१८॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥ या देवी सर्वभूतेषु, बुद्धि रूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥२०॥ नमस्तस्यै ॥२१॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥ या देवो सर्वभूतेषु, निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥२३॥ नमस्तस्यै ॥२४॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥ या देवो सर्वभूतेषु, क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥२६॥ नमस्तस्यै ॥२७॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥ या देवी सर्वभूतेषु-

उसको नमस्कार है ॥२०॥ उसको नमस्कार है ॥२१॥ उसको नमस्कार है ॥२२॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में निद्रा रूप से स्थित है, उसको नमस्कार है ॥२३॥ उसको नमस्कार है ॥२४॥ उसको नमस्कार है ॥२५॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में क्षुधा रूप से रहती है उसको नमस्कार है ॥२६॥ उसको नमस्कार

है ॥२७॥ उसको नमस्कार है ॥२८॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में छाया रूप से स्थित है उसको नमस्कार है ॥२९॥ उसको नमस्कार है ॥३०॥ उसको नमस्कार है ॥३१॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में शक्ति रूप से विराजमान है उसको नमस्कार है ॥३२॥ उसको नमस्कार है ॥३३॥ उसको नमस्कार है ॥३४॥ जो

च्छायारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥२९॥ नमस्तस्यै ॥३०॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥३१॥ या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥३२॥ नमस्तस्यै ॥३३॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥३४॥ या देवी सर्वभूतेषु, तृष्णारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥३५॥ नमस्तस्यै ॥३६॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥३७॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥३८॥ नमस्तस्यै ॥३९॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥४०॥ या देवी सर्वभूतेषु, जातिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥४१॥ नमस्तस्यै ॥४२॥ नमस्तस्यै

देवी सम्पूर्ण प्राणियों में तृष्णा रूप से विराजमान है उसको बारम्बार प्रणाम है ॥३५-३६॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में क्षमा रूप से स्थित है, उसको बारम्बार प्रणाम है ॥३८-४०॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में जातिरूप से रहती है उसको बारम्बार नमस्कार है ॥४१-४२॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में लज्जा रूप

से स्थित है उसको बारम्बार नमस्कार है ॥४४-४६॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में शान्तिरूप से स्थित है उसको बारम्बार नमस्कार है ॥४७-४९॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में श्रद्धारूप से स्थित है उसको बारम्बार नमस्कार है ॥५२-५३॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में कान्ति रूप से विराजमान है उसको बारम्बार

नमो नमः ॥४३॥ या देवी सर्वभूतेषु, लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥४४॥नमस्तस्यै ॥४५॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥४६॥ या देवी सर्वभूतेषु,शांतिरूपेण संस्थिता ।नमस्तस्यै ॥४७॥नमस्तस्यै ॥४८॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥४९॥ या देवी सर्वभूतेषु,श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥५०॥ नमस्तस्यै ॥५१॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥५२॥ या देवी सर्वभूतेषु,कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥५३॥ नमस्तस्यै ॥५४॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥५५॥ या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥५६॥ नमस्तस्यै ॥५७॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥५८॥ या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।

नमस्कार है ॥५३-५५॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में लक्ष्मी रूप से स्थित है उसको बार-बार प्रणाम ॥५६-५८॥ है जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में वृत्तिरूप से स्थित है उसको बार-बार नमस्कार है ॥५९-६०॥

जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में स्मृति रूप में रहती है उसको बारम्बार नमस्कार है ॥६२-६३॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में दयारूप से स्थित है, उसको बारम्बार नमस्कार है ॥६५-६६॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों

नमस्तस्यै ॥५९॥ नमस्तस्यै ॥६०॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥६१॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६२॥ नमस्तस्यै ॥६३॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥६४॥ या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६५॥ नमस्तस्यै ॥६६॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥६७॥ या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥६८॥ नमस्तस्यै ॥६९॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥७०॥ या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ।७१।नमस्तस्यै ॥७२॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥७३॥ या देवी सर्वभूतेषु भ्रांतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥७४॥ नमस्तस्यै ॥७५॥ नमस्तस्यै नमो

में तुष्टिरूप से स्थित है उसको बारम्बार नमस्कार है ॥६८-७०॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में माता रूप से स्थित है उसको बारम्बार नमस्कार है ॥७१-७३॥ जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में भ्रान्ति रूप से स्थित है उसको बारम्बार नमस्कार है ॥७४-७६॥ जो देवी इन्द्रियों व प्राणियों की अधिष्ठात्री है और सब

प्राणियों में सदा व्याप्त रहती है उसको बारम्बार नमस्कार है ॥७७॥ जो देवी सम्पूर्ण जगत में चैतन्य रूप से विराजमान हैं उसको बारम्बार नमस्कार है ॥७८-८०॥ अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए प्राचीन समय में देवताओं ने जिसकी स्तुति की तथा देवराज इन्द्र ने बहुत दिनों तक जिसकी सेवा की वह

नमः ॥७६॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्री, भूतानां चाखिलेषु या । भूतेषु सततं तस्यै, व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥७७॥ चितिरूपेण या कृत्स्न-मेतद् व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै ॥७८॥ नमस्तस्यै ॥७९॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥८०॥ स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता । करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी, शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥८१॥ या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैर-स्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते । या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः, सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥८२॥ ऋषिरुवाच ॥८३॥ एवं

कल्याणकारी ईश्वरी सब विपत्तियों को नष्ट कर मंगल करे ॥८१॥ उद्दण्ड दैत्यों से सन्तोष हुए हम देवगण जिस ईश्वर को इस समय प्रणाम करते हैं और जो भक्ति से नत-मस्तक हुए हम विनम्र देवों से स्मरण किये जाने पर हमारी सब विपत्तियों को तत्काल हर लेती हैं, वह भगवती हमारा संकट दूर करें ॥८२॥ ऋषि बोले ॥८३॥ हे राजन् ! इस प्रकार देवताओं के स्तुति करते समय पार्वतीजी गंगा-

जल में स्नान करने के लिए आई ॥८४॥ और देवताओं से बोलीं—आप लोग यहाँ किसकी स्तुति कर रहे हैं इतना कहते ही पार्वती के अंग में से शिवा उत्पन्न होकर बोली ॥८५॥ संग्राम में शुम्भ और निशुम्भ

स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती । स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥८४॥ साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रू र्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का । शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताऽब्रवीच्छिवा ॥८५॥ स्तोत्रं ममैतत् क्रियते, शुम्भदैत्यनिराकृतैः । देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥८६॥ शरीर कोशाद्यत्तस्याः, पार्वत्या निःसृताम्बिका । कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥८७॥ तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती । कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥८८॥ ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।

से अपमानित होने के कारण यह सम्पूर्ण देवता मेरी स्तुति कर रहे हैं। पार्वती के शरीर कोष से प्रकट हुई अम्बिका देवी सब लोकों में कौशिकी नाम से पुकारी जाती है ॥८७॥ कौशिकी के निकल जाने पर पार्वती का रंग काला हो गया है, तब उसका नाम कालिका हो गया और वह हिमालय पर्वत पर रहने लगी ॥८८॥ इसके अनन्तर परम सुन्दर रूप से युक्त अम्बिका देवी को शुम्भ और निशुम्भ के भृत्य मुण्ड

और चण्ड ने देखा ॥८९॥ उन्होंने शुम्भ से जाकर कहा–हे महाराज ! कोई परम रूपवती स्त्री हिमालय पर्वत को प्रकाशमान कर रही है ॥९०॥ हे असुरेश्वर ! ऐसा सुन्दर रूप कहीं भी किसी के देखने में नहीं आया, वह कौन है यह पता लगाइये, और उसे ग्रहण करिये ॥९६॥ स्त्रियों में वह रत्न रूप है, उसके

ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ।८९। ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा । काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥९०॥ नैव तादृक् क्वचिद्रूपं, दृष्टं केनचिदुत्तमम् । ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥९१॥ स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान्द्रष्टुमर्हति ॥९२॥ यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो । त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥९३॥ ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् । पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैः-श्रवा हयः

प्रत्येक अंग से अनुपम छटा निकलकर चारों तरफ प्रकाश कर रही है । हे दैत्यराज ! वहाँ आप उसको देखिये ॥९२॥ त्रिलोकी में जितने रत्न, मणि, हाथी, घोड़े आदि हैं वे सब आपके यहाँ शोभायमान हैं ॥९३॥ श्रेष्ठ ऐरावत हाथी, पारिजात का वृक्ष, उच्चैः श्रवा घोड़ा यह सब आपने इन्द्र से लिया है ॥९४॥

हंसयुक्त रत्नों से जड़ा हुआ ब्रह्माजी का अद्भुत विमान भी आपके आँगन की शोभा बढ़ा रहा है ॥९५॥ कुवेर से महा पद्म नामक निधि ले आये हो। समुद्र ने किञ्जल्किनी नाम की माला आपको दी है, जिसके कमल कभी मुरझाते नहीं हैं ॥९६॥ कंचन की वर्षा करने वाला वरुण का छत्र तथा प्रजापति का श्रेष्ठ

॥९४॥ विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे । रत्नभूतमिहानीतं, यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥९५॥ निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्। किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ।९६। छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति । तथाऽयं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ॥९७॥ मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता । पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥९८॥ निशुम्भस्याब्धिजाताश्च, समस्ता रत्नजातयः । वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥९९॥ एवं दैत्येन्द्र रत्नानि,समस्तान्याहृ-

रथ भी आपके यहाँ मौजूद है ॥९७॥ हे दैत्यराज । मृत्यु से उत्क्रान्तिका नामक शक्ति आपने छीन ली है, वरुण का पाश आपके भाई निशुम्भ ने छीनकर अपने पास रक्खा है ॥९८॥ समुद्र में से निकलने वाले सब रत्न भी निशुम्भ के यहाँ हैं, अग्नि से न जलने वाले ऐसे दो वस्त्र भी अग्नि ने आपको दिये हैं ॥९९॥

हे दैत्येन्द्र ! इस प्रकार आपने सारे रत्नों को इकट्ठा कर लिया है फिर स्त्रियों में रत्न कल्याणकारी ऐसी देवी को आप क्यों नहीं ग्रहण करते ॥१००॥ ऋषि बोले ॥१०१॥ चण्ड-मुण्ड के ऐसे वचन सुनकर शुम्भ ने महाअसुर सुग्रीव को दूत बनाकर भेजा ॥१०२॥ और उससे कहा कि मेरी आज्ञा उसको इस प्रकार कहना

तानि ते । स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी, त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥१००॥ ऋषिरुवाच ॥१०१॥ निशम्येति वचःशुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः । प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥१०२॥ इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम । यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥१०३॥ स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने । सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥१०४॥ दूत उवाच ॥१०५॥ देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः । दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥१०६॥ अव्याहताज्ञः

और ऐसा उपाय करना कि वह राजी-खुशी मेरे पास आ जाय ॥१०३॥ वह देवी वहां अत्यन्त रमणीक पर्वत पर विराजमान थी, वहां जाकर उसने अत्यन्त नम्र तथा मधुर वाणी से कहा ॥१०४॥ दूत बोला ॥१०५॥ हे देवि ! दैत्यराज शुम्भ ने जो कि इस समय तीनों लोकों के स्वामी हैं मुझ दूत को आपके पास

भेजा है ॥१०६॥ सब देवता उसकी आज्ञा को बिना उल्लंघन किये मानते हैं तथा दैत्यों के सब शत्रुओं पर उन्होंने विजय पाई है, उनने जो कहा है सो आप सुनो ॥१०७॥ सारी त्रिलोकी के मालिक हम हैं, देवगण हमारे आधीन हैं, यज्ञ के सम्पूर्ण भागों को भी अलग-अलग हम ही भोगते हैं ॥१०८॥ तीनों लाकों

सुर्वासु यः सदा देवयोनिषु । निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥१०७॥ मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः । यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक्-पृथक् ॥१०८॥ त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः । तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥१०९॥ क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः । उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥११०॥ यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च । रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥१११॥ स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् । सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्न-

के समस्त श्रेष्ठ रत्न हमारे अधिकार में हैं और इन्द्र का ऐरावत हाथी भी हम छीन कर ले आये हैं ॥१०९॥ समुद्र के मन्थन करने से जो उच्चैश्रवा नामक अश्व-रत्न मिला है, देवताओं ने नम्रता से वह हमें भेंट किया है ॥११०॥ हे सुन्दरी ! इनके अतिरिक्त अन्य जितने भी रत्न देवता, गन्धर्व और नागों के

अधिकार में थे, वे सब हमारे पास आगये हैं ॥१११॥ हे देवि ! तुम्हें हम संसार में स्त्रियों में रत्न समझते हैं, इसलिये तुम भी हमारे पास आ जाओ, क्योंकि रत्नों का भोग करने वाले केवल हम ही हैं ॥११२॥ हे चञ्चल नेत्र वाली ! तुम रत्न रूप हो, इसलिये मुझे तथा मेरे बल शाली लघु भाई निशुम्भ को पाकर आनन्द भोग प्राप्त करो ॥११३॥ हमको स्वीकार करने से तुमको अतुलनीय ऐश्वर्य प्राप्त होगा । ऐसा

भुजो वयम् ॥११२॥ मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् । भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥११३॥ परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् । एतद् वुद्धया समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥११४॥ ऋषिरुवाच ॥११५॥ इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ । दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥११६॥ देव्युवाच ॥११७॥ सत्यमुक्तं त्वयानात्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम् । त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥११८॥ किं त्वत्र

अपनी बुद्धि से विचार कर हमारी पत्नी बन जाओ ॥११४॥ ऋषि बोले ॥११५॥ इस प्रकार दूत के कहने पर वह दुर्गा, भगवती श्रद्धा देवी, जिसने समस्त संसार को धारण कर रक्खा है, हृदय में मुस्कराती हुई गम्भीर वाणी से बोली ॥११६॥ देवी बोली ॥११७॥ हे दूत ! तूने जो कहा सो सत्य है, इसमें झूँठ बिल्कुल नहीं है, शुम्भ त्रिलोकी का राजा है और निशुम्भ भी वैसा ही है ॥११८॥ किन्तु इस सम्बन्ध में मैंने जो

प्रतिज्ञा कर ली है, उसको किस प्रकार झूँठ करूँ, अपनी अल्प बुद्धि के कारण मैं जो प्रतिज्ञा पहले कर चुकी हूँ, उसे सुन ॥११९॥ संग्राम में मुझे जीतकर जो मेरे घमण्ड को तोड़ेगा तथा मेरे समान ही पराक्रमी होगा, उसे ही मैं अपना पति बनाऊँगी ॥१२०॥ इसलिये शुम्भ व निशुम्भ महाअसुर मेरे पास आकर मुझे

यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् । श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥११९॥ यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति । यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥१२०॥ तदाऽऽगच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः । मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥१२१॥ दूत उवाच ॥१२२॥ अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः । त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥१२३॥ अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि । तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥१२४॥ इन्द्राद्याः

जीतलें और शीघ्र ही मेरा पाणिग्रहण करें, इसमें देर करने की क्या आवश्यकता है ॥१२१॥ दूत बोला ॥१२२॥ हे देवि ! घमण्ड में भरकर मेरे सामने ऐसा मत कहो, तीनों लोकों में शुम्भ और निशुम्भ के सामने ठहरने वाला कौन है ॥१२३॥ उनके अतिरिक्त अन्य दैत्यों के सामने भी सारे देवता संग्राम में

नहीं डट सकते हैं फिर तुम अकेली स्त्री किस प्रकार ठहर सकती हो ॥१२४॥ इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवता भी जिन शुम्भ आदि दैत्यों के सामने न ठहर सके, उनके सामने तुम स्त्री होकर कैसे पहुँचोगी ॥१२५॥ इसलिये मेरा कहना मानकर तुम शुम्भ-निशुम्भ के पास चली चलो, नहीं तो केश पकड़ कर खींचते हुए तुम्हें लेजाना पड़ेगा, इसमें तुम्हारी सब प्रतिष्ठा बिगड़ जायगी ॥१२६॥ देवी बोली ॥१२७॥ तुम्हारा कहना

सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे । शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥१२५॥ सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भ-निशुम्भयोः । केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥१२६॥ देव्युवाच ॥१२७॥ एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्य्यवान् । किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥१२८॥ स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः । तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ॐ ॥१२९॥

ठीक है, शुम्भ और निशुम्भ ऐसे ही पराक्रमी तथा वीर्यवान है, किन्तु क्या करूं ? मैं बिना विचारे प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ ॥१२८॥ अतः तुम जाओ और मेरा सब कथन आदर पूर्वक दैत्यराज से कहदो, फिर वह जैसा उचित समझें सो करें ॥१२९॥

इति श्रीमार्कंडेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूत-सम्वादो नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

अथ ध्यानम् । ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरु-रत्नावली-भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां, नेत्रत्रयोद्भासिताम् । मालाकुम्भकपालनीरजकरां, चन्द्रार्द्धचूडां परां, सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां, पद्मावतीं चिन्तये ॥

ऋषि बोले ॥१॥ देवी के ऐसे वचन सुनकर दूत क्रोध से परिपूर्ण होगया और दैत्यराज के पास आकर सब हाल विस्तार पूर्वक सुनाया ॥२॥ उस दूत के ऐसे वचन सुनकर दैत्यराज अत्यन्त क्रोधित

'ॐ' ऋषिरुवाच।१।ॐइत्याकर्ण्य वचो देव्याः,स दूतोऽमर्षपूरितः। समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥२॥ तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः । सक्रोधःप्राह दैत्यानामधिपं धूम्र-लोचनम् ॥३॥ हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः । तामानय

होकर अपने सेनापति धूम्रलोचन से इस प्रकार कहने लगा ॥३॥ हे धूम्रलोचन ! तुम अपनी सेना को साथ

लेकर वहां जाओ ओर उस दुष्टा को बाल खोंचकर बलपूर्वक यहां पकड़ आओ। यदि ओर कोई उसकी रक्षा करने के लिये आवे तो उसका भी वध कर देना, वह देवता, यक्ष, गन्धर्व कोई भी क्यों न हो ॥५॥ ऋषि बोले ॥६॥ इस प्रकार शुम्भ की आज्ञा पाकर वह धूम्रलोचन साठ हजार असुर दैत्य लेकर शीघ्र

बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥४॥ तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः। स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्वएव वा ॥५॥ ऋषिरुवाच ॥६॥ तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं, स दैत्यो धूम्रलोचनः। वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥७॥ स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्। जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भ-निशुम्भयोः ॥८॥ न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारिमुपैष्यति। ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥९॥ देव्युवाच ॥१०॥ दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः। बलान्नयसि मामेवं ततः

ही वहां पहुँच गया ॥७॥ वहां पहुँच कर हिमालय पर्वत पर बैठी हुई देवी को देखकर उसने ललकारा और कहा—तू शीघ्र ही शुम्भ-निशुम्भ के पास चल, यदि इस समय प्रसन्नता पूर्वक मेरे स्वामी के पास तू नहीं चलेगी तो मैं जबर्दस्ती बाल पकड़ कर खींचते हुए तुझे वहां ले चलूँगा ॥८-९॥ देवी बोली ॥१०॥

नहीं चलेगी तो मैं जबर्दस्ती बाल पकड़ कर खींचते हुए तुझे वहीं ले चलूँगा।
तुझे दैत्येश्वर ने भेजा है तू स्वयं ही बलवान है, सेना तेरे साथ है, यदि तू बलपूर्वक मुझे ले जायगा तो मैं तेरा क्या कर सकती हूँ ।।१२।। ऋषि बोले ! देवी के ऐसा कहने पर धूम्रलोचन देवी के सम्मुख दौड़ा, तब अम्बिका देवी ने हुँकारोच्चारण मात्र से ही उसको भस्म कर दिया ।।१३।। इस पर उस असुर की सेना अत्यन्त क्रोधित हो गई, किन्तु अम्बिका के तीक्ष्ण वाणों, शक्ति फरसाओं की वर्षा कर देने

किं ते करोम्यहम् ।।११।। ऋषिरुवाच ।।१२।। इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः । हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ।।१३।। अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका। ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः।१४। ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् । पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः।।१५।।कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् । आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ।१६। केषाञ्चित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी।

से बिल्कुल शान्त हो गई ।।१४।। इतने में देवी का सिंह क्रोध से गरजता हुआ, गर्दन के बाल हिलाता हुआ असुरों की सेना पर टूट पड़ा ।।१५।। उसने कितने ही दैत्य को पंजे के प्रहार से, कितने ही असुरों को पटक कर दाढ़ से घायल करके मार डाला ।।१६।। कितने ही दैत्यों के पेट अपने नखों से फाड़ दिये

और थप्पड़ मारकर कितने ही दैत्यों के सिर धड़ से जुदा कर दिये ॥१७॥ उस सिंह ने कितने ही असुरों की भुजायें और सिर काट डाले। और गर्दन के बाल हिलाते हुए अन्यों के पेट फाड़कर उनका रक्त पान किया ॥१८॥ इस प्रकार अमित क्रोध में उन्मत्त उस देवी के वाहन बलवान सिंह ने क्षणभर में असुरों

तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥१७॥ विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथाऽपरे। पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१८॥ क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना। तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१९॥ श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥२०॥ चुकोप दैत्याधिपतिः, शुम्भः प्रस्फुरिताधरः। आज्ञापयामास च तौ, चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥२१॥ हे चण्ड! हे मुण्ड! बलैर्बहुभिःपरिवारितौ। तत्र गच्छत गत्वा च, सा समानीयतां लघु ॥२२॥ केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा

की सम्पूर्ण सेना का विनाश कर दिया ॥१९॥ देवी के द्वारा धूम्रलोचन का मरण तथा उनके सिंह के द्वारा अपनी सम्पूर्ण सेना का विनाश सुनकर दैत्यराज बड़ा क्रोधित हुआ। उसके होठ फड़कने लगे और उसने चण्ड, मुण्ड नामक महादैत्यों को इस प्रकार आज्ञा दी ॥२०-२१॥ हे चण्ड! हे मुण्ड! तुम लोग

विशाल सेना लेकर उस पर्वत पर जाओ और उस स्त्री के केश पकड़ कर अथवा उसे बाँधकर शीघ्र यहाँ ले आओ, यदि इसमें तुम्हें किसी प्रकार का संशय हो तो संग्राम में सब प्रकार के अस्त्र, शस्त्र तथा दैत्य

वा, यदि वः संशयो युधि । तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥२३॥ तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते । शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॐ ॥२४॥

सेना का प्रयोग करके उसका बध कर डालना ॥२२-२३॥ उस दुष्टा के मर जाने पर तथा सिंह के भी मर जाने पर उस अम्बिका को पकड़कर तथा बाँधकर शीघ्र ही वापिस आओ ॥२४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भ सेनानी
धूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

—: ❀ :—

* अथ सप्तमोऽध्यायः *

अथ ध्यानम्। ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलांगीं, न्यस्तैकाङ्‌घ्रि सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीं। कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्त-वस्त्रां, मातंगीं शंखपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम्।

ऋषि बोले ॥१॥ शुम्भ की आज्ञानुसार चण्डमुण्ड चतुरंगिनी सेना के साथ अस्त्र-शस्त्र लेकर चल दिये ॥२॥ फिर हिमालय पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने सिंह पर सवार देवी को मुस्कराते हुए देखा ॥३॥ देवी को देखकर कितने ही दैत्य धनुष और तलवार लेकर देवी के पास आकर उसको पकड़ने का

'ॐ' ऋषिरुवाच।१। आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चंडमुंडपुरोगमाः। चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥२॥ ददृशुस्ते ततो देवीमी-षद्धासां व्यवस्थिताम्। सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृंगे महति काञ्चने ॥३॥ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः। आकृष्ट चापासि-धरास्तथाऽन्ये तत्समीपगाः ॥४॥ ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका

प्रयत्न करने लगे ॥४॥ तब अम्बिका ने शत्रुओं को देखकर इतना क्रोध किया कि उसके मुँह का रंग श्याम हो गया ॥५॥ भ्रकुटी टेढ़ी हो गई और ललाट में से शीघ्र ही भयंकर मुखी काली तलवार और पाश लिये उत्पन्न हुई ॥६॥ वे चीते की खाल की साड़ी और नर-मुंडो की माला पहिने हुए थीं, विचित्र खट्वांग धारण कर रखा था, उनका शरीर क्या था केवल हड्डियों का ढांचा था, जिसके कारण वे

तानरीन्प्रति । कोपेन चास्या वदनं मसीवर्णमभूत्तदा ॥५॥ भ्रुकुटी-कुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् । काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥६॥ विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा । द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥७॥ अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा । निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥८॥ सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् । सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत् तद्बलम् ॥९॥ पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहियोधघंटासम-

अत्यन्त भयानक मालूम पड़ती थीं ॥७॥ मुख विशाल था, जीभ के लपलप करने के कारण भयंकर नेत्र भीतर को धंसे हुए लाल हो रहे थे, उनका भयंकर शब्द चारों दिशाओं को गुञ्जारित कर रहा था ॥८॥ वे काली देवी बड़ी तीव्रता के साथ असुरों की सेना पर टूट पड़ीं और उनका संहार करती हुईं उनका

भक्षण करने लगीं ॥९॥ पार्श्वों के रक्षक, अंकुश वाले महावत, योद्धाओं और घण्टा सहित हाथियों को एक ही हाथ से पकड़ कर मुँह में डाल लेती थीं ॥१०॥ और इसी प्रकार घोड़ों सहित योद्धाओं, सारथि समेत रथों को मुँह में डालकर डरावने रूप से चबा लेती थीं ॥११॥ किसी के बाल पकड़ कर, किसी का

न्वितान् । समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ।१०।तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह। निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥११॥ एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् । पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥१२॥ तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥१३॥ बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ।१४। असिना निहताःकेचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः । जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥१५॥ क्षणेन

गला घोंट कर, किसी को पैरों से कुचल कर, किसी को छाती से रिगड़ कर मार रही थीं ॥१२॥ और बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र जो कि असुर छोड़ते थे, उनको मुँह से पकड़ कर दांतों से चूर्ण कर देतीं थीं ॥१३॥ इस तरह विशाल शरीर वाले बलवान असुरों की सम्पूर्ण सेना कुछ भक्षण कर डाली

और कुछ प्रहारों से मार डाली ॥१४॥ कितने ही को तलवार से मार दिया, बहुतों को खट्वांग से पीड़ित कर दिया और दांतों से नोंच कर नष्ट कर दिया ॥१५॥ इस तरह पलभर में देवी द्वारा अपनी सेना नष्ट हुई देखकर चण्ड उस भयंकर काली देवी की ओर लपका ॥१६॥ उस महाअसुर ने बाणों की भीषण वर्षा करके और मुण्ड ने सहस्रों चक्र चलाकर, उस डरावनी आंखों वाली देवी को ढक दिया ।१७।

तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम् । दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥१६॥ शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः । छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥१७॥तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् । बभुर्यथाऽर्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥१८॥ ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी । काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१९॥उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत । गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिना-

वे अनेकों चक्र देवी के मुख में प्रवेश करते हुए ऐसी शोभा देते थे, मानो सूर्य के अनेक प्रतिबिम्ब मेघों की घटा में प्रवेश कर रहे हों ॥१८॥ जब अत्यन्त क्रोधित होकर देवी ने भयंकर गर्जना करके विकट अट्टहास किया, उस समय उनके भयकर मुख के भीतर के दांतों की पंक्ति की ज्योति, जो कि कठिनता से देखी जाती थी, बड़ी उज्ज्वल दिखाई देती थी ॥१९॥ फिर हं शब्द उच्चारण करती हुई देवी तलवार लेकर

चण्ड पर झपटी और उसके बाल पकड़ कर उसका सिर काट डाला ॥२०॥ चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड देवी की ओर लपका, देवी ने क्रोधित होकर तलवार से उसे भी मारकर पृथ्वी पर पटक दिया ॥२१॥ बाकी बची हुई सेना बलवान चण्ड-मुण्ड को मरा हुआ देखकर भयभीत होकर चारों दिशाओं में

च्छिनत् ॥२०॥ अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डंनिपातितम् । तमप्यपातयद् भूमौ सा खंगाभिहतं रुषा ॥२१॥ हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् । मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥२२॥ शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च । प्राहप्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥२३॥ मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू । युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भञ्च हनिष्यसि- ॥२४॥ऋषिरुवाच ॥२५॥ तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ । उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥२६॥

भाग गई ॥२२॥ काली चण्ड-मुण्ड का सिर लेकर चण्डिका के पास गई और प्रचण्ड अट्टहास करती हुई बोली ॥२३॥ युद्ध में चण्ड-मुण्ड नामक महापशु मैंने मार दिये, अब युद्ध स्थल में शुम्भ और निशुम्भ का वध तुम स्वयं करना ॥२४॥ ऋषि बोले ॥२५॥ महाअसुर चण्ड-मुण्ड को देखकर कल्याणकारी देवी काली

से मीठी वाणी में बोली ॥२६॥ हे देवि ! क्योंकि तुम चंड और मुंड को मेरे पास लाई हो, इस कारण संसार में तुम चामुंडा के नाम से विख्यात होओगी ॥२७॥

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता । चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॐ ॥२७॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्याय: ॥२७॥

—: * :—

* अथ अष्टमोऽध्याय *

अथ ध्यानम् । ॐ अरुणां करुणातरंगिताक्षीं धृतपाशांकुश-बाणचापहस्ताम् । अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ।

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥ चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।

ऋषि बोले ॥१॥ इस तरह काली भगवती द्वारा चंड और मुंड नामक दैत्यों का संहार हो गया और असुरों की विशाल सेना भी नष्ट हो गई, तब असुरों के अधिपति शुम्भ ने क्रोधित होकर दैत्यों

की सम्पूर्ण सेनाओं को संग्राम करने के लिए तैयार होने का आदेश दिया ॥२-३॥ उसने कहा—कि आज उदायुद्ध नाम के ८६ दैत्य सेना नायक और कम्यु नाम के ८४ दैत्य सेना नायक अपनी सेनाओं के साथ युद्ध के लिये तत्काल कूच करें ॥४॥ और कोटिवीर्य नामक दैत्यों के ५० कुल तथा धूम्र नाम वाले दैत्यों के

बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥२॥ ततः कोपपराधीन-चेताः शुम्भः प्रतापवान् । उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥३॥ अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः । कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥४॥ कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै । शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥५॥ कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः । युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥६॥ इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः । निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥७॥ आयान्तं

१०० कुल मेरी आज्ञा से इसी समय जायँ ॥५॥ कालक, द्रोहृद, मौर्य और कालकेय नामक दैत्य भी मेरी आज्ञा से युद्ध के लिये सजकर शीघ्र ही जायँ ॥६॥ भयानक शासक दैत्यराज शुम्भ इस प्रकार आज्ञा देकर स्वयं भी हजारों बड़ी सेनाओं के साथ युद्ध के लिये चला ॥७॥ चण्डिका देवी ने उस भयंकर सैन्य

को आती हुई देखकर अपने धनुष की टंकोर से पृथ्वी और आकाश के मध्य भाग को गुञ्जायमान कर दिया ॥८॥ हे राजन् ! इसके अनन्तर चण्डिका के सिंह ने घोर शब्द किया और अम्बिका ने भी घण्टे का शब्द करके उसको और भी बढ़ा दिया ॥९॥ धनुष की टंकोर, सिंह की गर्जना और घण्टे के शब्द से सब

चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥८॥ ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप । घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥९॥ धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा । निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारिताननना ॥१०॥ तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् । देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥११॥ एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् । भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥१२॥ ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः । शरीरेभ्यो विनि-

दिशायें गूँज उठीं, उस भयानक शब्द से काली ने अपने विकट मुख को और भी विस्तृत किया ॥१०॥ उस भयानक शब्द को सुनकर क्रोधयुक्त दैत्य-सेना ने चण्डिका देवी, सिंह तथा काली को चारों ओर से घेर लिया ॥११॥ हे राजन् ! इसी समय असुरों के विनाश तथा देवताओं के कल्याण के लिये ब्रह्मा

शिव, कार्तिकेय, विष्णु ओर इन्द्रादि दवों की शक्तियाँ जो कि अत्यन्त पराक्रमी और बलशाली थीं, उनके शरीर से निकल कर उन्हीं का रूप धारण किये हुए चंडिका देवो के समोप गईं ॥१२-१३॥ इन देवताओं का जैसा रूप, जैसा आभूषण और जैसा वाहन था, उन्हीं साधनों से युक्त होकर उनकी शक्तियाँ दैत्यों से युद्ध करने के लिये आईं ॥१४॥ हंसयुक्त विमान में बैठकर, रुद्राक्ष की माला और कमंडल धारण करके

ष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥१३॥ यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् । तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥१४॥ हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः । आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥१५॥ माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी । महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥१६॥ कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना । योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ।१७। तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता । शङ्ख-

ब्रह्मा की शक्ति आई, उसका नाम ब्रह्माणी हुआ ॥१५॥ शिवजी की शक्ति बैल पर सवार होकर, त्रिशूल को लिये हुए, महानाग का कंकण तथा चन्द्ररेखा से शोभित होकर वहाँ आई ॥१६॥ स्वामि कार्तिकेय की शक्ति अम्बिका उन्हीं का रूप धारण करके श्रेष्ठ मोर की सवारी पर आरूढ़ होकर शक्ति लिये हुए दैत्यों से संग्राम करने के लिये ॥१७॥ इसी प्रकार भगवान विष्णु को शक्ति गरुड़ पर सवार होकर

शंख, चक्र गदा, शारंग धनुष तथा खड्ग हाथ में धारण किये हुए वहाँ आई ॥१८॥ अति सुन्दर बाराह का रूप धारण करने वाले भगवान हरि की शक्ति भी वाराह रूप धारण कर वहाँ आई ॥१६॥ नारसिंही शक्ति भी नृसिंही के सदृश शरीर धारण करके वहाँ आई, जिसके गर्दन के हिलने से आकाश के

चक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१८॥ यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः। शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥१९॥ नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः । प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥२०॥ वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता । प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥२१॥ ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः । हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥२२॥ ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा । चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥२३॥

नक्षत्र भी बिखरे जाते थे ॥२०॥ गजराज ऐरावत पर सवार होकर वज्र हाथ में धारण करके इन्द्र की शक्ति भी वहां आई । इन्द्र के समान ही उसका रूप था, उसके सहस्र नेत्र थे ॥२१॥ फिर देव शक्तियों से युक्त महादेवजी चंडिका से कहने लगे कि मेरी प्रसन्नता के लिये तुम शीघ्र ही इन दैत्यों का वध करदो

॥२२॥ तब देवी के शरीर से अत्यन्त भयंकर, उग्र रूप वाली चण्डिका शक्ति उत्पन्न हुई, जिसकी आवाज संकड़ों गोदड़ियों के समान थी ॥२३॥ वह अपराजिता देवी धूम्र वर्ण की जटा वाले शिवजी से बोली कि हे भगवान् ! आप मेरी तरफ से दूत बनकर शुम्भ और निशुम्भ के पास जाइये ॥२४॥ और अत्यन्त अभिमानी दैत्य शुम्भ और निशुम्भ से तथा और भी अन्य दैत्य जो वहां मौजूद हों उनसे कहिये ॥२५॥

सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता । दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥२४॥ ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ । ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥२५॥ त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः । यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥२६॥ बलावलेपादथ चेद् भवन्तो युद्धकांक्षिणः । तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२७॥ यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् । शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥२८॥ तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वा-

हे दैत्यो ! यदि तुम्हारी जीवित रहने की इच्छा है तो तुम पाताल लोक को चले जाओ । त्रिलोकी का राज्य-इन्द्र को मिल जाय और देवता यज्ञ-भाग का भोग करें ॥२६॥ और यदि बल के अभिमान से तुम्हारी युद्ध करने की आकांक्षा हो तो मेरे सामने आओ, मेरी योगनियां तुम्हारे मांस से तृप्त होंगी॥२७॥

चूँकि देवी ने शिवजी को दूत-काय पर नियुक्त किया था, इसलिये वे संसार में शिवदूती के नाम से प्रसिद्ध हुईं ॥२८॥ भगवान् शिवजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर उन असुरों को भी बड़ा क्रोध हुआ और जहाँ वह कात्यायनी बैठी थीं वहां गये ॥२९॥ फिर वे दैत्य क्रोध में भरकर उस देवी के ऊपर वाण, शक्ति और तलवार आदि शस्त्रों की वर्षा करने लगे ॥३०॥ उस देवी ने भी अपने धनुष की टंकोर की और दैत्यों द्वारा

ख्यातं महासुराः । अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥२९॥ ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः । ववर्षुरुद्धता-मर्षास्तां देवीममरारयः ॥३०॥ सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूल-शक्तिपरश्वधान् । चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥३१॥ तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् । खट्वाङ्गपोथि-तांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥३२॥ कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्-हतौजसः । ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति॥३३॥माहे-

छोड़े हुए वाण, शूल, शक्ति और फरसों को खेल ही खेल में काट डाला ॥३१॥ उस समय काली देवी शत्रुओं के सामने होकर शूल के प्रहार से उनका नाश करती हुई और खट्वांग से उनको कुचलती हुई रणभूमि में विचरण करने लगी ॥३२॥ और ब्रह्माणी जिधर भी जाती थीं, उसी ओर कमण्डल का जल छिड़क कर शत्रुओं के वीर्य और पराक्रम को नष्ट कर देती थीं ॥३३॥ इस प्रकार माहेश्वरी त्रिशूल द्वारा

और वैष्णवी चक्र द्वारा और अत्यन्त क्रोधित कुमार कार्तिकेय शक्ति द्वारा दैत्यों का संहार करने लगे ॥३४॥ और इन्द्र ने भी अपने वज्र के प्रहार से सैकड़ों दैत्यों को उनका रक्त बहाते हुए पृथ्वी पर सुला दिया ॥३५॥ वाराही शक्ति ने तुण्ड के प्रहार से कितनों को ही मार दिया और दाढ़ों के अग्र भाग से कितनों की ही छाती विदीर्ण कर डाली तथा कितने ही चक्र की चोट खाकर पृथ्वी पर लोटने लगे ॥३६॥

श्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी। दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥३४॥ ऐन्द्री कुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः। पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः।३५। तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः। वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः।३६। नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान्। नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा।३७। चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः। पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्च खादाथ सा तदा ॥३८॥ इति

और नारसिंही भी अन्य महाअसुरों को अपने नखों से विदीर्ण करती हुई भक्षण करती हुई अपने सिंहनाद द्वारा आकाश को और चारों दिशाओं को शब्दायमान करती हुई रणभूमि में विचरने लगी ॥३७॥ बहुत से असुर शिवदूती के विकट अट्टहास से अत्यन्त भयभीत होकर पृथ्वी पर मूर्छित अवस्था में गिरने लगे,

शिवदूती ने उनके धराशायी होते ही उनका भक्षण करना आरम्भ कर दिया ॥३८॥ इस प्रकार क्रोधित मातृगणों द्वारा अनेक प्रकार के उपायों से बड़े २ दैत्यों को नष्ट होते हुए देख असुरों की सेना भाग खड़ी हुई ॥३९॥ फिर मातृगणों से पीड़ित हुए असुरों को रणस्थल में से भागते हुए देखकर रक्तबीज नामक महाअसुर क्रोधपूर्ण होकर लड़ने के लिए आया ॥४०॥ इस असुर के शरीर से जो रक्त की बूँद पृथ्वी

मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान्। दृष्ट्वाऽभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३९॥ पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान्। योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥४०॥ रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः। समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदाऽसुरः ॥४१॥ युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः। ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४२॥ कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम्। समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्त-

पर गिरती थीं उसी के समान बलशाली एक दूसरा महाअसुर पृथ्वी पर पैदा हो जाता था ॥४१॥ वह महादैत्य रक्तबीज हाथ में गदा लेकर ऐन्द्री के साथ संग्राम करने लगा। तब ऐन्द्री ने अपने वज्र से रक्तबीज पर प्रहार किया ॥४२॥ वज्र के प्रहार से उसके शरीर से बहुत सा रुधिर गिरने लगा। और उससे उसी के सदृश रूप वाले और पराक्रमी योद्धा पैदा होने लगे ॥४३॥ उसके शरीर से जितनी रुधिर

की बूंदें गिरीं उतने हो पुरुष रक्तबोज के समान वीर्य, वल और पराक्रम में पैदा होगये ॥४४॥ वे रुधिर से उत्पन्न हुए पुरुष भी अत्यन्त उग्र शस्त्रों की वर्षा करते हुए मातृगणों के साथ घोर संग्राम करने लगे ॥४५॥ फिर वज्र के प्रहार से उसका मस्तक कट जाने पर उसमे जो रुधिर बहा उससे हजारों ही पुरुष पैदा हो

त्पराक्रमाः ॥४३॥ यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः। तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः॥४४॥ ते चापियुयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः। समं मातृभिरत्युग्रशस्त्र पातातिभीषणम्।४५। पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा। ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४६॥ वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह। गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम्।४७। वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः। सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः।४८। शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना। माहेश्वरी त्रिशू-

गये ॥४६॥ युद्ध में वैष्णवी ने रक्तबीज पर चक्र का प्रहार किया और ऐन्द्री ने उस पर गदा से प्रहार किया ॥४७॥ वैष्णवी के चक्र से कटे हुए उस दैत्य के शरीर से जो रुधिर बहा उससे उसी के समान आकार वाले हजारों महाअसुर उत्पन्न हुए जिनसे सारा जगत व्याप्त हो गया ॥४८॥ फिर कौमारी ने

शक्ति से, बाराही ने खड्ग से और माहेश्वरी ने त्रिशूल से महाअसुर रक्तबीज को घायल किया ।।४९।। क्रोधयुक्त उस महाअसुर ने भी गदासे सम्पूर्ण मातृ-शक्तियों पर अलग-अलग प्रहार किया ।।५०।। शक्ति और त्रिशूल आदि अनेक प्रकार के प्रहारों से घायल होने पर उसके शरीर से जो रुधिर की धारा पृथ्वी पर गिरी उससे सैकड़ों दैत्य प्रकट हुए ।।५१।। इस तरह उस महाअसुर के रुधिर से उत्पन्न हुए अनेक

लेन रक्तबीजं महासुरम् ।।४९।। स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् । मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महाऽसुरः ।।५०।। तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि । पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ।।५१।। तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् । व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ।।५२।। तान्विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा । उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ।।५३।। मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दू-

असुरों द्वारा जब सम्पूर्ण जगत व्याप्त हो गया, तब देवताओं को बड़ा भय हुआ ।।५२।। देवताओं को दुखी देखकर चण्डिका, काली से इस प्रकार बोली—हे चामुण्डे ! तुम अपने मुख का और विस्तार करो ।।५३।। और मेरे शस्त्रों द्वारा गिरते रुधिर बिन्दु तथा बिन्दुओं से उत्पन्न महा दैत्यों को अपने बेगवान मुख

द्वारा खाती जाओ ॥५४॥ युद्धभूमि में रुधिरोत्पन्न इन महान् दैत्यों को भक्षण करती हुई तुम घूमती रहो। तभी इस दैत्य का रुधिर क्षीण होगा, इसी प्रकार इसका क्षय होगा ॥५५॥ तुम्हारे द्वारा इस प्रकार खाये जाने पर फिर यह भयानक नये दैत्य पैदा नहीं हो सकेंगे। इस प्रकार कह चण्डिकाजी ने रक्तबीज पर

न्महासुरान्। रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥५४॥ भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान्। एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥५५॥ भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा, न चोत्पत्स्यन्ति चापरे। इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥५६॥ मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्। ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥५७॥ न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि। तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥५८॥ यतस्ततस्तद्वक्त्रेण, चामुण्डा सम्प्रतीच्छति। मुखे समुद्-

त्रिशूल से प्रहार किया ॥५६॥ फिर काली ने रक्तबीज का रुधिर मुख में ग्रहण कर लिया। उस दैत्य ने भी चण्डिका पर गदा चलाई ॥५७॥ किन्तु उस गदापात द्वारा चंडिका को कुछ थोड़ी सी भी वेदना न हुई। रक्तबीज के क्षत-विक्षत शरीर से बहुत सा रुधिर गिरने लगा ॥५८॥ उसे चामुण्डा मुख द्वारा पीती

गयी और रक्तपात से जो दैत्य उत्पन्न होगये थे उन्हें भी मुख में डालती गयी ॥५९॥ इस प्रकार चामुण्डा ने सभी दैत्य खा डाले और रक्तबीज का रुधिर भी पी डाला। तब देवी ने शूल, वज्र, बाण, तलवार, ऋष्टि आदि आयुधों से रुधिर हीन उस महाअसुर रक्तबीज को मार दिया, शस्त्र समूहों से आहत होकर

गता येऽस्या रक्तपातान् महासुराः ॥५९॥ तांश्च खादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्। देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥६०॥ जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम्। स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ॥६१॥ नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः। ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥६२॥ तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ॐ॥६३॥

वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥६०-६१॥ हे राजन्! उसका रुधिर तो चामुण्डा ने पी लिया था। इस प्रकार उसकी मृत्यु होने पर देवता परम प्रसन्न हुए ॥६२॥ मातृगण उसके रुधिर पान के मद से उद्धत होकर नृत्य करने लगीं ॥६३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी माहात्म्ये रक्तबीजबधोनाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

—: * :—

* अथ नवमोऽध्यायः *

(निशुम्भ—वध)

* अथ ध्यानम् *

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः । बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रमर्धाम्बिकेश-मनिशं वपुराश्रयामि ।

जो बन्धूक के समान रक्तवर्ण एवं स्वर्ण के समान पीतवर्ण हैं, अपने भुजदण्डों में सुन्दर रुद्राक्ष माला, पाश तथा वरदायनी मुद्रायें धारण कर रहे हैं, इस प्रकार अर्ध चन्द्रमा के आभूषण से शोभित, तीन नेत्र वाले, अर्ध-नारीश्वर स्वरूप के श्री विग्रह की मैं निरन्तर शरण लेता हूँ ।

॥ ॐ राजोवाच ॥ १ ॥ विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम । देव्याश्चरित माहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥२॥ भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते । चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥३॥ ऋषिरुवाच ॥४॥ चकार

राजा बोला—॥२॥ हे भगवन् ! आपने रक्तबीज के वध से सम्बन्ध रखने वाली श्री देवीजी के

चरित्र का माहात्म्य विचित्र प्रकार से कह सुनाया है ॥२॥ अब मैं रक्तबीज के वध हो जाने पर महान् क्रोधी शुम्भ तथा निशुम्भ ने जो कर्म किया हो, उसे सुनना चाहता हूँ ॥३॥ ऋषि बोले—॥४॥ हे राजन् ! रक्तबीज के मर जाने पर एवं युद्ध में अन्य असुरों के भी मारे जाने पर शुम्भ-निशुम्भ दैत्य का क्रोध बढ़ गया ॥५॥ अपनी सारी सेना का नाश होता देखकर निशुम्भ के क्रोध का पारा चढ़ गया। फिर दैत्यों की

कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्व-न्येषु चाहवे ॥५॥ हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन्। अभ्य-धावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥६॥ तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः। संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥७॥ आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः। निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥८॥ ततो युद्धमतीवा-सीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः। शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः

प्रधान सेना को साथ लेकर निशुम्भ युद्ध में दौड़ आया ॥६॥ उससे आगे-पीछे दायें-बायें बड़े २ दैत्य थे। वे क्रोध के मारे ओठ काट रहे थे. वे सभी देवी को मार डालने के लिये आगये ॥७॥ कुपित होकर शुम्भ भी अपनी सेना के साथ मातृगणों से लड़कर चण्डिका को मार डालने की इच्छा से आगया ॥८॥ तब

देवीजी के साथ शुम्भ-निशुम्भ का बड़ा भारी युद्ध होने लगा, दोनों दैत्य बादलों की तरह बाणों की बर्षा करने लगे ॥९॥ अपने बाणों के समूहों से चण्डिका ने उनके बाण काट दिये । फिर शस्त्र समूहों से उन दैत्यों के अंगों पर प्रहार किया ॥१०॥ निशुम्भ ने तीखी तलवार तथा चमचमाती ढाल उठाली और देवी के पराक्रमी वाहन सिंह के सिर पर प्रहार किया ॥११॥ अपने वाहन पर इस प्रकार प्रहार होता देखकर

॥९॥ चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः । ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥१०॥ निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् । अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥११॥ ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् । निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१२॥ छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः। तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥१३॥ कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः।

देवी ने क्षुरप्र नामक बाण द्वारा निशुम्भ की बड़ी तलवार तथा आठ चन्द्रों वाली ढाल काट दी ॥१२॥ तथा ढाल के कट जाने पर उस दैत्य ने शक्ति चलाई, उसे सामने आता हुआ देखकर देवी ने चक्र द्वारा उसके दो टुकड़े कर डाले ॥१३॥ तब अत्यन्त कुपित होकर निशुम्भ दानव ने शूल उठा लिया और उसे

फक दिया, देवीजी ने मुक्के के प्रहार से उसे भी चूर २ कर दिया ।।१४।। गदा उठाकर फिर चण्डिका की ओर उसने फैंकी, देवी ने उसको भी त्रिशूल से काट दिया और वह भस्म होगयी ।।१५।। उसके अनन्तर दैत्यराज को फरसा उठाये आता देखकर देवी ने बाण समूहों से प्रहार कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया ।१६। अपने भयानक पराक्रमी भाई निशुम्भ के इस प्रकार धराशायी होने पर शुम्भ क्रोध में भर गया और

आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ।।१४।। आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति। सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ।।१५।। ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् । आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ।।१६।। तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे । भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ।।१७।। स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः । भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ।।१८।। तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खम-

अम्बिका को मारने के लिये सामने आया ।।१७।। वह रथ पर बैठा था, उसकी बड़ी २ अनुपम आठ भुजाएँ थीं। उनमें भयंकर शस्त्र शोभायमान थे, उन भुजाओं से सारे आकाश को ढांप कर वह शोभित हो रहा था ।।१८।। उसे इस प्रकार आता देखकर देवी ने शंख बजाया और धनुष का अत्यन्त दुःसह टंकोर

किया ॥ १६॥ समस्त दैत्यों के तेज को हरने वाले अपने घंटे का शब्द करके उसने दिशाओं को भर दिया ॥२०॥ तब सिंह ने भी बड़े २ हाथियों के महामदको चूर करने वाली गर्जना लगाई । उससे आकाश पृथ्वी एवं दशों दिशाएँ गूँज उठीं ॥२१॥ तब काली ने आकाश में उड़कर पृथ्वी पर दोनों हाथों से ताड़ना

वादयत्। ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१६॥ पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च। समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥२०॥ ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः। पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥२१॥ ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत्। कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥२२॥ अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह। तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२३॥ दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा। तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसं-

की । उस शब्द से पहिले के सभी शब्द मन्द पड़ गये ॥२२॥ तब शिवदूती ने अमंगलरूप अत्यन्त अट्टहास किया, उन शब्दों से दैत्य डर गये और शुम्भ के क्रोध का पारा चढ़ गया ॥२३॥ फिर जब अम्बिका ने कहा, कि हे दुरात्मन् ! ठहर, तब आकाश में स्थित देवता जय-जयकार करने लगे ॥२४॥ शुम्भ ने आगे

बढ़कर आग बरसाती हुई भयानक शक्ति चलाई। अग्नि के पहाड़ की तरह इसे आती हुई देखकर देवी ने अग्नि की भारी उल्का से हटा दिया ।।२५।। शुम्भ ने फिर सिंहनाद किया, उससे त्रिलोकी गूँज उठी। हे राजन् ! उस सिंहनाद का इतना घोर शब्द था जैसे कि वज्रपात हो। उसने बाकी शब्दों को परास्तकर

स्थितैः ।।२४।। शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा । आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ।।२५।। सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् । निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ।।२६।। शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् । चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ।।२७।। ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् । स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ।।२८।। ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः । आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ।।२९।।

दिया ।२६। तब शुम्भ द्वारा छोड़े हुए बाणों को देवी ने तथा देवी द्वारा चलाये बाणोंको शुम्भने अपने २ उग्र बाणों द्वारा सैकड़ों हजारों टुकड़े कर दिये ।।२७।। तब चण्डिका ने कुपित होकर शुम्भ को शूल से मारा, उसके लगते ही वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।२८।। इतने में निशुम्भ चैतन्य होकर वहां पहुँच

गया। उसने हाथ में धनुष लेकर बाणों से काली तथा सिंह पर प्रहार किया ॥२९॥ उस दानवराज ने अपनी दस हजार भुजायें बनालीं, फिर चक्रों का प्रहार करने लगा और चण्डिकाजी को आच्छादित कर दिया ॥३०॥ तब घोर संकटों का नाश करने वाला भगवती दुर्गा ने अपने बाणों से उन चक्रों तथा सभी

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः । चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥३०॥ ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी । चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥३१॥ ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् । अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३२॥ तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका । खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३३॥ शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् । हृदि विव्याध शूलेन वेगा-

बाणों को काट गिराया ॥३१॥ तब निशुम्भ दैत्य सेना से आवृत होकर चण्डिका के लिये हाथ में गदा लेकर बड़े वेग से भागा ॥३२॥ वेग से आते हुए उसकी गदा को तीखी तलवार के द्वारा चण्डिका ने काट दिया। फिर दैत्य ने शूल उठा लिया ॥३३॥ शूल हाथ में लिये उस देवोपीडक निशुम्भ को आता

देखकर चण्डिका ने अपना शूल वेग से चलाकर उसकी छाती बींध दी ॥३४॥ उसकी छाती फटते ही उसी छाती से एक और महाबली पुरुष निकला। वह 'खड़ी रह, खड़ी रह' इस प्रकार कहने लगा ॥३५॥ उस छाती से निकलते पुरुष की बात सुनते ही देवी अट्टहास करके हँसी और तलवार से उसका सिर काट दिया, तो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३६॥ तब भयानक दाढ़ों वाला सिंह दाढ़ों से दैत्यों के सिर कुचल-

विद्धेन चण्डिका ।३४। भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः। महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३५॥ तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः। शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥३६॥ ततः सिंहश्चखादोग्रं, दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्। असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३७॥ कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः। ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः।३८। माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे। वारा-

कुचल कर खाने लगा। इसी प्रकार काली तथा शिवदूती ने बहुत से दैत्यों का भक्षण कर डाला ॥३७॥ कितने ही दैत्य तो कौमारी शक्ति से नष्ट होगये, एवं कितने ही ब्रह्माणी के मन्त्रोक्त जल छिड़कने से तेजोहत होकर भाग गये ॥३८॥ कई एक माहेश्वरी शक्ति से छिन्न होकर गिर गये। कितने एक वाराही

शक्ति के तुण्ड प्रहार से चूर्ण-चूर्ण होकर पृथ्वी में समा गये ।।३९।। वैष्णवी शक्ति ने चक्र द्वारा दानवों को टुकड़े-टुकड़े कर डाला । ऐन्द्री के हाथ से छूटे हुए वज्र द्वारा कितने एक यमपुरी पहुँचे ।।४०।। इसी प्रकार

हीतुण्डक्षातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ।।३९।। खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः । वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ।।४०।। केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् । भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॐ ।।४१।।

कुछ एक तो असुर नष्ट होगये, कितने ही घोर संग्राम से भाग गये एवं कितने ही दैत्यों को काली तथा शिवदूती ने खा डाला और कई एक सिंह के ग्रास बन गये ।।४१।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

—: ❀ :—

* अथ दशमोऽध्यायः *

(शुम्भ वध)

ध्यानम्—'ॐ' उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्निनेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम्। रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम्।

मैं उस शिव-शक्ति रूपा कामेश्वरी भगवती का हृदय में भजन करता हूँ, जो तपाये हुए स्वर्ण की भाँति मनोहर गौर रूपा हैं, सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि जिसके तीन नेत्र हैं, जिसने चन्द्रमा की रेखा मस्तक पर धारण की हुई है और मनोहर भुजाओं में धनुष, बाण, अंकुश, पाश तथा शूल धारण किये हुए हैं।

॥ 'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥ निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्। हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥२॥ बलावलेपाद् दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।

ऋषि बोले—॥१॥ अपने प्राणप्रिय भाई निशुम्भ की मृत्यु देखकर और सेना को भी मरता देखकर कुपित होकर शुम्भ कहने लगा ॥२॥ अरी दुष्ट दुर्गे! तू बल के घमण्ड से गर्व मत कर। अरी अभिमानिनी!

तू तो अन्य स्त्रियों के बल के सहारे लड़ रही है ।।३।। देवी बोली—।।४।। अरे दुष्ट ! मैं अकेली हूँ, संसार भर में मेरे समान दूसरी है कौन ? देख, ये तो मेरी विभूतियां हैं, मुझमें ही प्रवेश कर रही हैं ।।५।। इतना कहते ही ब्राह्मणी आदि सभी शक्तियां उस देवी के शरीर में समा गईं, अकेली अम्बिका देवी रह गई ।।६।।

अन्यासां बलमाश्रित्य युद्धचसे यातिमानिनी ।। ३ ।। देव्युवाच ।।४।। एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा । पश्यैता दुष्ट ! मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ।।५।। ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् । तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ।।६।। देव्युवाच ।।७।। अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता । तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।।८।। ऋषिरुवाच ।।९।। ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः । पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ।।१०।। शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव

देवी बोली—।।७।। मैं अपनी ऐश्वर्य शक्ति से सम्पन्न अनेकों विभूतियों के रूपों में पहिले यहां विद्यमान थी, अब सभी रूप मैंने समेट लिये । अब तो अकेली मैं ही युद्ध में खडी हूँ, तू भी स्थिर होजा ।८। ऋषि बोले—।।९।। तब सभी देवता तथा दैत्यों के देखते २ देवी और शुम्भ इन दोनों में युद्ध छिड़ गया ।।१०।। तीखे

बाणों की वर्षा तथा भयंकर अस्त्र-शस्त्र से उन दोनों का युद्ध सभी लोकों के लिये भयंकर प्रतीत होने लगा ॥११॥ अम्बिका जितने भी दिव्य अस्त्र छोड़ती जाती, दैत्येन्द्र उन्हें निवारक अस्त्रों द्वारा तोड़ता जाता ॥१२॥ इसी प्रकार परमेश्वरी अम्बिका भी खेल ही खेल में हुँकारादि शब्दों द्वारा दैत्य के छोड़े हुए

दारुणैः । तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥११॥ दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका । बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥१२॥ मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी । बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः॥१३॥ ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः । सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥१४॥ छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे । चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥१५॥ ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् । अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्या-

दिव्य अस्त्रों को तोड़ती गयी ॥१३॥ तदनन्तर असुर ने सैकड़ों वाणों से देवी को आच्छादित कर दिया। तब देवी ने भी कुपित होकर बाणों द्वारा उसका धनुष काट डाला ॥१०॥ धनुष के टूट जाने पर दैत्येन्द्र ने हाथ में शक्ति उठाली । वह अभी उसके हाथ में ही थी कि देवी ने चक्र द्वारा वह शक्ति भी काट डाली

॥१५॥ तब दैत्यराज तलवार तथा सौ चन्द्रमा वाली चमचमाती ढाल लेकर देवी पर भागा ॥१६॥ तब देवी ने भागते हुए उसको तलवार तथा सूर्य जैसी चमचमाती ढाल अपने धनुष से छोड़े हुए तीखे बाणों से तुरन्त काट दिये, और रथ के घोड़े, सारथी को भी मार दिया। धनुष तो पहले ही कट चुका था, अतः भयानक मुद्गर लेकर अम्बिका को मारने के लिये दैत्य उद्यत होगया ॥१७-१८॥ उसके मुद्गर को भी

नामधिपेश्वरः ॥१६॥ तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका। धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥१७॥ हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः। जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिका-निधनोद्यतः ॥१८॥ चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः। तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥१९॥ स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः। देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनो-रस्यताडयत् ॥२०॥ तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले। स

देवी ने तीखे बाणों से काट दिया। फिर वह दैत्य मुक्का तानकर बड़े वेग से दौड़ा ॥१९॥ जाते ही उस दैत्येश्वर ने देवी के हृदय में मुक्का मार दिया। देवी ने भी उसकी छाती पर एक चपेट जमा दी ॥२०॥ देवी की चपेट के लगते ही वह दैत्यराज पृथ्वी पर गिर पड़ा। गिर कर फिर सहसा उसी प्रकार उठ खड़ा

हुआ ॥२१॥ तब उछल कर देवी को उठाकर आकाश में स्थित होगया। वहां भी निराधार होकर चण्डिका देवी उसके साथ युद्ध करने लगी ॥२२॥ आकाश में उस समय दैत्य तथा चण्डिका का आपस में घोर युद्ध हो रहा था। वह युद्ध मुनियों को विस्मयकारक था ॥२३॥ तब अम्बिका ने उसके साथ देर तक युद्ध करते करते दैत्य को उठा लिया और उठाकर उसे पृथ्वी पर पटक दिया ॥२४॥ देवी द्वारा पटका हुआ वह

दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥२१॥ उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः। तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥२२॥ नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्। चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम्॥२३॥ ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह। उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२४॥ स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः। अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥२५॥ तमायान्तं ततो देवी

पृथ्वी पाकर खड़ा होगया और मुक्का तानकर वह दुष्ट देवी को मारने की इच्छा से बड़े वेग से दौड़ा ॥२५॥ तब उस दैत्यराज को आता हुआ देखकर देवी ने उसकी छाती में त्रिशूल भोंक दिया और पृथ्वी पर गिरा दिया ॥२६॥ देवी के शूल से क्षत-विक्षत होकर पृथ्वी पर पड़ते ही उसके प्राण निकल गये।

उसका गिरना भी समुद्र, द्वीप एवं पर्वतों के सहित सारी पृथ्वी को हिला देने वाला था ॥२७॥ उस दुरात्मा के मरते ही सारा जगत् स्वस्थ एवं प्रसन्न होगया, आकाश भी बहुत ही साफ दिखाई देने लगा ॥२८॥ पहिले जो उपद्रवी मेघ उठ रहे थे तथा उल्कापात हो रहे थे, वे सभी शान्त हो गये । दैत्य के मारे जाने

सर्वदैत्यजनेश्वरम् । जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥२६॥ स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः । चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥२७॥ ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि । जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥२८॥ उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः । सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥२९॥ ततो देवगणाः सर्वे हर्ष-निर्भरमानसाः । बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥३०॥ अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः । ववुः पुण्यास्तथा वाताः

पर नदियां अपने २ मार्ग पर चलने लगीं ॥२९॥ उसकी मृत्यु होते ही सभी देवताओं के मन प्रसन्न होगये, गन्धर्व मनोहर गायन करने लगे ॥३०॥ अन्य गन्धर्व बाजे बजाने लगे, अप्सरा गण नाचने लगीं, वायु

पवित्र होकर चलने लगी, सूर्य उज्ज्वल होकर चमकने लगा ॥३१॥ यज्ञशालाओं की शान्त हुई अग्नियां पुनः प्रज्ज्वलित हो उठीं और दिशाओं की भयंकर आवाजे शान्त हो गयीं ॥३२॥

सुप्रभोऽभूद् दिवाकरः ॥३१॥ जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ॥ॐ॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधोनाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

—:❀:—

* अथ एकादशोऽध्यायः *

(देवताओं द्वारा देवी की स्तुति तथा देवी द्वारा देवताओं को वरदान)

ध्यानम्

'ॐ' बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाऽभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

प्रातःकाल के सूर्य के समान जिसके अंगों की कान्ति है, जिसके मस्तक पर चन्द्रमा का किरीट मुकुट है, ऊँचे उठे हुए जिसके स्तन युगल हैं, तीन नेत्रों से शोभित है, जो मन्द मुस्कराहट वाले मुखारविन्द से शोभायमान है। अभय मुद्रा, सुन्दर हाथों में जिसने वरदायक अंकुश, पाश धारण किये हुए हैं, ऐसी भुवनेश्वरी देवी का मैं भजन करता हूँ।

ऋषि बोले—॥१॥ द वीजी ने जब द त्यराज महा असुर का वध कर दिया, तब इन्द्रादिक सभी द वता अग्नि को मुख करके अपने मनोरथ सिद्धि के लाभ से सभी दिशाओं को अपने मुख कमलों के तेज से प्रकाशित करते हुए कात्यायनी द वी की स्तुति करने लगे ॥२॥ द वता बोले—हे शरणागतों के संकट निवारिणी द वी ! हम पर प्रसन्न हूजिये, हे मारे जगत की माता ! प्रसन्न हूजिये, हे विश्वेश्वरि !

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥ देव्या हते तत्र महाऽसुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् । कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद् विकाशि-वक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥२॥ देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य । प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥३॥ आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि । अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नम-लङ्घ्यवीर्ये ॥४॥ त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं

विश्व की रक्षा कीजिये । हे द वि ! आपही चर-अचर की स्वामिनी हो ॥३॥ आपही एक मात्र जगत् का आधार हो, पृथ्वी स्वरूप से विराज रही हो । द वीजी ! आपका पराक्रम अलंघनीय है । आप ही तो जल स्वरूप में स्थित होकर इस सारे विश्व को तृप्त कर रही हो ॥४॥ अनन्त पराक्रम वाली आप ही वैष्णवी

शक्ति हो, विश्व भर की परमबीज माया भी आप हो। हे देवी ! आपने इस सारे जगत् को मोहित कर रखा है। पृथ्वी पर आपकी प्रसन्नता से ही मुक्ति का लाभ होता है ॥५॥ हे देवीजी ! सभी विद्याएँ आपका भेद हैं। जगत् भर की स्त्री सब आपकी ही मूर्तियाँ हैं। हे जगदम्बे ! आप अकेली ने सारे जगत् को व्याप्त किया हुआ है। आपकी स्तुति क्या हो सकती है ? आप तो स्तुति से परे हो एवं वाणी हो,

परमासि माया। सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥५॥ विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु। त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्य-परा परोक्तिः ॥६॥ सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी। त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥७॥ सर्वस्य बुद्धिरू-पेण जनस्य हृदि संस्थिते। स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु-ते ॥८॥ कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि। विश्वस्योपरतौ

परा वाणी हो ॥६॥ जब कि आप सबकी आधार एवं स्वर्ग मुक्ति देने वाली हो, इसी से आपकी स्तुति हो गई। आपकी स्तुति के लिये अन्य कौन सी उत्तम उक्तियाँ हो सकती हैं ? सारे जनों के हृदय में बुद्धिरूप होकर आपही स्थित हो। हे देवि ! स्वर्ग एवं मोक्ष देने वाली नारायणि ! आपको नमस्कार हो

॥८॥ कला-काष्ठादिक रूप से अवस्थाओं को क्रम से बदल देने वाली विश्व के संहार में शक्तिरूपा हे नारायणि देवी ! आपको नमस्कार हो ॥९॥ हे देवि ! आप सभी मंगलों को देने वाली मंगला हो, सभी अर्थों को सिद्ध कराने वाली शिवा हो, शरणागत रक्षक हो, तीन नेत्रों वाली हो, हे गौरी नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥१०॥ आप ही सृष्टि, स्थिति एवं संहार करने में सनातनी शक्ति स्वरूप हो। आप

शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥९॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१०॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि। गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे। सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१२॥ हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि। कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।१३। त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि। माहेश्वरी-

गुणमयी एवं गुणों का आधार हो नारायणि देवि ! आपको नमस्कार हो ॥११॥ शरण में आये हुए दीन-दु:खियों की रक्षा करने में संलग्न, सबके संकट निवारण करने वाली नारायणि देवि ! आपको नमस्कार हो ॥१२॥ हंसों से जुते हुए विमान पर विराजमान ब्रह्माजी के रूप को धारण करने वाली कुश मिश्रित

जल छिड़कने वाली नारायणि देवि ! आपको नमस्कार हो ॥१३॥ माहेश्वरी के स्वरूप से त्रिशूल, चन्द्रमा और सर्पों को धारण करने वाली, महावृषभ पर बैठने वाली नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥१४॥ मोर तथा मुर्गों से आवृत महाशक्ति को धारण करने वाली पाप रहित कौमारी रूप में स्थित हे नारायणि !

स्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१४॥ मयूरकुक्कुटवृते महाशक्ति-धरेऽनघे । कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते॥१५॥ शङ्ख-चक्रगदाशाङ्‌र्गगृहीतपरमायुधे । प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१६॥ ग्रहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे । वराह-रूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७॥नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे । त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१८॥किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले । वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१९॥ शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।

आपको नमस्कार हो ॥१५॥ शंख, चक्र, शारंग इन उत्तम अस्त्रों को धारण करने वाली वैष्णवी शक्तिरूप प्रसन्न होओ, हे नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥१६॥ हाथ में भयंकर चक्र धारण किये, दाढ़ों पर पृथ्वी उठाये हुए, वाराहरूप धारिणी शिवे नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥१७॥ भयानक नृसिंह का

रूप धारण करके दैत्यों का वध करने के लिये उद्यमशीले, त्रिलोकी की रक्षा करने में परायण नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥१८॥ हजार उज्ज्वल नेत्र धारण करने वाली, किरीट धारिणि, महावज्र धारिणि, वृत्रासुर के प्राण हरने वाली ऐन्द्री शक्ति नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥१६॥ शिवदूती के स्वरूप से

घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०॥ दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे । चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२१॥ लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे । महारात्रि महाऽविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२॥ मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि । नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ।२३। सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥२४॥ एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् । पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥२५॥ ज्वालाक-

दैत्यों की बड़ी सेना का नाश करने वाली, महानाद करने वाली, भयंकर रूप वाली, नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥२०॥ भयानक दाढ़ों से महा भयानक मुख वाली, मुण्ड-मालाओं से शोभायमान, मुण्डों का मथन करने वाली चामुण्डा नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥२१॥ लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा,

पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि, महाविद्या, हे नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥२२॥ मेधा, सरस्वती वरा, ऐश्वर्यरूपा पार्वती, महाकाली, संयमशीला, सर्वस्वामिनी हे नारायणि ! आपको नमस्कार हो ॥२३॥ सर्वस्वरूपा, सर्व ईश्वरी, सभी शक्तियों से सम्पन्न हे दुर्गा देवी ! हमारी भयों से रक्षा करो, हे देवि ! आपको नमस्कार हो ॥२४॥ यह आपका मुख तीन नेत्रों से भूषित अति सुन्दर है, हमारी सभी भयों से

रालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् । त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥२६॥ हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् । सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥२७॥ असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः । शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥२८॥ रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् । त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥२९॥ एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां

रक्षा करो, हे कात्यायनि ! आपको नमस्कार हो ॥२५॥ हे भद्रकाली ! सभी दैत्यों का नाश करने वाली भड़कती हुई अग्नि की ज्वालाओं से महा भयानक आपका त्रिशूल हमारी भय से रक्षा करे, आपको नमस्कार हो ॥२६॥ हे देवि ! शब्द द्वारा सारे जगत् को व्याप्त करके जो दैत्यों का तेज हनन कर देता

है, वह आपका घण्टा जैसे माता अपने पुत्रों को पापों से बचाती है, वैसे ही हमारी रक्षा करे ॥२७॥ हे चण्डिके ! आपके सुन्दर हाथों की तलवार जो असुरों के खून तथा चर्बी से लथपथ हो रही है वह हमारा मंगल करे, हम आपको प्रणाम करते हैं ॥२८॥ हे देवि ! जब आप प्रसन्न होती हो तो सभी रोगों को नष्ट कर देती हो, आप क्रोध करने पर सभी मनोरथ एवं कामनाएँ नाश करती हो। आपके आश्रित पुरुषों

देवि महासुराणाम् । रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०॥ विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या । ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥३१॥ रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र । दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥३२॥ विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् । विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति

पर कोई संकट नहीं आता, अपितु आपके आश्रित पुरुष दूसरों को भी आश्रय देते हैं ॥२९॥ हे देवि ! आपने जो आज इन धर्म-द्वेषी महादैत्यों का क्षय किया है, उसमें अपने स्वरूप को अनेकों शक्तिरूपों में विभक्त करके किया है। हे अम्बिके ! आपके सिवा और कौन दूसरा ऐसा कर सकता है ॥३०॥ विद्याओं

में विचारों के दीपकरूप शास्त्रों में वेद-वाक्यों में आपके सिवा और किसका वर्णन आता है और न आपके सिवा कोई दूसरी शक्ति है जो इस विश्व को अज्ञानरूप भयानक अन्धकार से पूर्ण ममतारूपी गढ़े में भटका रही है ॥३१॥ जहाँ राक्षस हों, जहाँ कठोर विष वाले सर्प हों, जहाँ शत्रु हों जहाँ पर डाकुओं का दल आ जाय, वन में आग लग रही हो एवं समुद्र के मध्य में जहाँ दावानल हो, वहीं उपस्थित होकर आपही विश्व की रक्षा कर लेती हो ॥३२॥ हे विश्वेश्वरि ! आप विश्व की रक्षा करती हो, विश्वरूपा होकर

विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥३३॥ देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः । पापानि सर्व्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥३४॥ प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि । त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥३५॥ देव्युवाच ॥३६॥ वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ । तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम्

विश्व को धारण करती हो, आप विश्वेश्वर से भी वन्दनीया हो । जो पुरुष भक्ति पूर्वक आपको प्रणाम करते हैं वे विश्व के आश्रय हो जाते हैं ॥३३॥ हे देवि ! जिस प्रकार इस समय दैत्यों के वध से तुरन्त हमारी रक्षा करली इसी प्रकार नित्य ही हमें शत्रुओं के भय से बचाइये, प्रसन्न हूजिये और जल्दी से सारे जगत् के पाप नष्ट करिये । पापों से उत्पन्न महामारी आदि उपद्रव भी दूर हों ॥३४॥ हे देवि !

विश्वभर के दुःख दूर करने वाली ! प्रणाम करने वाले हम पर प्रसन्न हूजिये । तीनों लोकों के निवासियों से स्तुति की गई मातेश्वरि ! सब लोकों को वर दीजिये ।।३५।। देवि बोलो —।।३६।। हे देवतागण ! मैं वर देने को तैयार हूँ, मनचाहा वर मागलो, ससार का उपकारक वर मैं अवश्य देती हूँ ।।३७।। देवता बोले—

।।३७।। देवा ऊचुः ।।३८।। सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि । एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ।।३९।। देव्युवाच ।।४०।। वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे । शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ।।४१।। नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा । ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याऽचलनिवासिनी ।।४२।। पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले । अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ।।४३।। भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्वैप्रचित्तान्महासुरान् ।

।।३८।। हे सर्वेश्वरि ! आप त्रिलोकी की समस्त बाधाएँ शान्त करें और इसी प्रकार हमारे शत्रुओं का भी नाश करती रहें ।।३९।। देवी बोली–।।४०।। हे देवतागण ! वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें युग के आने पर शुम्भ-निशुम्भ नामी दो और महादैत्य पैदा हो जायेंगे ।।४१।। तब मैं नन्दगोप की गृहिणी यशोदा के गर्भ से अवतार लूँगी और विन्ध्याचल में जाकर निवास करूँगी । उस समय उन दोनों का नाश

करूँगी ।।४२।। फिर पृथ्वी पर महा भयंकर रूप से अवतार लेकर वैप्रचित्ती नामक दैत्यों का संहार करूँगी ।।४३।। उन वैप्रचित्ती नामक घोर दैत्यों का भक्षण करते २ मेरे दांत अनार के फलों की तरह लाल हो जायेंगे ।।४४।। तब स्वर्ग में देवता और पृथ्वी पर मनुष्य मेरी स्तुति करते समय मुझे 'रक्त-दन्तिका कहेंगे ।।४५।। उसके अनन्तर जब पृथ्वी पर सौ वर्षों तक वर्षा नहीं होगी, पानी मिलेगा ही नहीं

रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः।४४। ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः । स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्त-दन्तिकाम् ।।४५।। भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्टयामनम्भसि । मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ।।४६।। ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् । कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शता-क्षीमिति मां ततः ।।४७।। ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्-भवैः । भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेःप्राणधारकैः ।।४८।। शाक-

जब मुनिजन मेरी स्तुति करेंगे । उस समय में अयोनिजा नाम से प्रकट होऊँगी ।।४६।। मैं सौ नेत्रों द्वारा उन मुनियों को देखूँगी, तब मनुष्य मेरा शताक्षी नाम से कीर्तन करेंगे ।।४७।। हे देवतागण ! उस समय मैं सारे संसार को जब तक वर्षा नहीं होती तब तक अपने शरीर से उत्पन्न शाक द्वारा पालूँगी ।।४८।। पृथ्वी पर

शाकम्भरी इस नाम से मैं विख्यात हो जाऊँगी, वहां पर मैं एक दुर्गम नाम के दैत्य का भी वध करूँगी ॥४६॥ फिर मेरा नाम दुर्गादेवी नाम से विख्यात होगा । फिर जब मैं भयानक रूप धारण करके हिमाचल पर ॥५०॥ रहने वाले राक्षसों का मुनियों की रक्षा के लिये भक्षण करूँगी उस समय सभी मुनि भक्तिभाव

म्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि । तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥४६॥ दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति । पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥५०॥ रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् । तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥५१॥ भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति । यदाऽरुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ।५२। तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् । त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥५३॥ भ्रामरीति च मां लोकास्तदा

से नम्र होकर मेरी स्तुति करेंगे ॥५१॥ तब मेरा नाम 'भीमादेवी' विख्यात होगा । फिर जब अरुण नामक दैत्य त्रिलोकी में भय एवं बाधाएँ उपस्थित कर देगा ॥५२॥ तब मैं त्रिलोकी की रक्षा के लिये छः पंजों वाले असंख्यों भ्रमरों का रूप धारण करके उस महा असुर का वध करूँगी ॥५३॥ उस समय मुझे भ्रामरी

कहकर लोक सर्वत्र: मेरी स्तुति करेंगे। इसी प्रकार जब-जब भी लोकों में दैत्यों द्वारा बाधाएँ उपस्थित होंगी ॥५४॥ तब-तब मैं अवतार ले-लेकर शत्रुओं का नाश करूँगी ॥५५॥

स्तोष्यन्ति सर्वतः। इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥५४॥ तदा तदावतोर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॐ॥५५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्याः स्तुतिर्नामै एकादशोऽध्यायः ॥११॥

* अथ द्वादशोऽध्यायः *

देवी-चरित्रों के पाठ का माहात्म्य ।

अथ ध्यानम्—॥ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्। हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे।

बिजली की रेखा के समान कान्ति वाली, सिंह के स्कन्ध पर विराजमान, भयानक रूप, तलवार-तथा ढाल हाथ में लिये, अनेकों कन्याओं से सेवित, हाथों में चक्र, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश

तर्जनी मुद्रा धारण करने वाली अग्निमयी, चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाली त्रिनेत्रा दुर्गा देवी का मैं भजन करता हूँ ॥

'ॐ' देव्युवाच ॥१॥ एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः । तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥२॥ मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् । कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥३॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः । श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥४॥ न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः । भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥५॥ शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः । न शस्त्रानलतोयौघात् कदाचित्सम्भविष्यति ॥६॥ तस्मान्ममैत-न्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः । श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं

देवी बोली—।१। जो पुरुष एकाग्र होकर इन स्तोत्रों से नित्य मेरी स्तुति करेगा उसकी सभी बाधाएँ मैं निस्सन्देह नाश कर दूँगी ॥२॥ और जो मधुकैटभ का नाश, महिषासुर का घात एवं शुम्भ-निशुम्भ इन दोनों का वध आदि प्रसंगों का कीर्तन करेंगे ॥३॥ और जो एकाग्र होकर अष्टमी, चतुर्दशी, नवमी तिथियों

में भक्तिपूर्वक इन मेरे उत्तम चरित्रों का माहात्म्य सुनेंगे ॥४॥ उन्हें किसी प्रकार का अनिष्ट स्पर्श नहीं कर सकेगा, न पापों से उत्पन्न आपत्तियाँ उन्हें दुःखित कर सकेंगी, न दरिद्रता प्राप्त होगी, न प्रिय का वियोग ॥५॥ शत्रु का भय नहीं होगा, लुटेरे तथा राजा से भी कोई भय नहीं रहेगा और न शस्त्रों से, न

स्वस्त्ययनं हि तत् ॥७॥ उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् । तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥८॥ यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ् नित्यमायतने मम । सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ॥९॥ बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे । सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥१०॥ जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् । प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्नि-होमं तथा कृतम् ।११। शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी। तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥१२॥ सर्वाबाधा-

अग्नि से, न जलराशि से कभी भी भय होगा।६। इसलिये हमारा माहात्म्य एकाग्रचित्त होकर पढ़ना चाहिये एवं भक्ति से सदा सुनना चाहिये, मेरा चरित्र परम मंगलदायक है ॥७॥ महामारी से उत्पन्न सभी उपद्रवों को तथा तीनों तापों को मेरा माहात्म्य शान्त कर देता है ।८। जिस मन्दिर में नित्य ही मेरा यह माहात्म्य

पढ़ा जा रहा हो उस स्थान का मैं कभी त्याग नहीं करती, वहां मेरा सदा सान्निध्य रहता है ॥९॥ बलि-दान, पूजा, अग्निहोत्र एवं महोत्सव में इस मेरे सारे चरित्र का पाठ करे और श्रवण करे ॥१०॥ इस प्रकार से विधि जानकर अथवा बिन जाने बलि, पूजा, हवन आदि जो कुछ भी करेगा उसे मैं प्रीतिपूर्वक

विनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः । मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१३॥ श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः । पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१४॥ रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते । नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥१५॥ शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने । ग्रह-पीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ।१६। उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः । दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१७॥ बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् । संघातभेदे

ग्रहण कर लेती हूँ ॥११॥ शरद्काल में मेरी वार्षिक महा पूजा की जाती है। उस अवसर पर जो मेरे इस माहात्म्य को भक्ति के साथ सुनेगा ॥१२॥ सभी बाधाएँ निवृत्त हो जायँगी और वह धन-धान्य पुत्रादि से संयुक्त हो जायगा। मेरी उस पर कृपा होगी, इसमें संशय नहीं है ॥१३॥ मेरे इस माहात्म्य को, मेरी

उत्पत्ति की पवित्र कथाओं को एवं युद्ध में मेरे पराक्रम को जो पुरुष सुनेगा वह सर्वथा निर्भय हो जायगा ॥१४॥ मेरा माहात्म्य सुनने वाले पुरुषों के शत्रु नष्ट हो जाते हैं, कल्याण प्राप्त होता है और कुल आनन्दित रहता है ॥१५॥ सभी शान्ति कर्मों में, बुरे स्वप्न देखने पर, ग्रहों की दारुण पीड़ा होने पर मेरा

च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१८॥ दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम्। रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१९॥ सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम्। पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥२०॥ विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम्। अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥२१॥ प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते। श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥२२॥ रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम। युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥२३॥ तस्मिञ्छ्रुते वैरि-

माहात्म्य श्रवण करे ॥१६॥ उसके सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं, ग्रहों की दारुण पीड़ाएं निवृत्त हो जाती हैं, मनुष्यों से देखा हुआ बुरा स्वप्न सुख-स्वप्न में हो जाता है ॥१७॥ बालग्रहों द्वारा पीड़ित बालकों के लिये यह माहात्म्य शान्तिदायक है। मनुष्यों में फूट हो जाने पर यह माहात्म्य मित्रता कराने में परम

उत्तम है ॥१८॥ सभी दुराचारियों के बल को भली भाँति नाश कर देता है। पढ़ने से ही राक्षस, भूत, पिशाच आदि का नाश हो जाता है ॥१९॥ और मेरा यह सारा माहात्म्य मेरी सन्निधि प्राप्त करा देता है। पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, गन्ध तथा उत्तम दीपों द्वारा पूजन से ॥२०॥ ब्राह्मणों को भोजन कराने

कृतं भयं पुंसां न जायते । युष्माभि स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥२४॥ ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् । अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥२५॥ दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः । सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥२६॥ राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा । आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥२७॥ पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे । सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ।२८। स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात् ।

से, होम से, प्रतिदिन के अभिषेक से तथा और भी अनेक प्रकार के (पदार्थों) के दान से वर्ष भर जो ॥२१॥ यह सब मेरे अर्पण करके आराधना करते हैं, इससे जो मुझे प्रसन्नता होती है वही प्रसन्नता मेरे इस माहात्म्य के एक बार सुनने से हो जाती है। इसे सुनते ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं फिर आरोग्य

प्राप्त हो जाता है ॥२२॥ मेरी उत्पत्तियों का कीर्तन तो सभी भूतों से रक्षा करता है, युद्धों में वर्णित मेरा जो चरित्र दुष्ट दैत्यों का नाश करने वाला है ॥२३॥ उसके श्रवण करने पर पुरुषों को बैरियों से किसी प्रकार का भी भय नहीं रहता है। हे देवतागण ! तुम लोगों ने जो मेरी स्तुतियां की हैं एवं ब्रह्मर्षियों ने जो की हैं ॥२४॥ और ब्रह्माजी ने जो की हैं, वे ही सभी मंगलमयी बुद्धि देती हैं। वनमें शून्य स्थान पर अथवा वन की अग्निमें घिर जाने पर ॥२५॥ शून्य स्थानमें डाकुओं से घिर जाने पर, शत्रुओं द्वारा पकड़े जाने

मम प्रभावात्सिहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥२९॥ दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥३०॥ ऋषिरुवाच ॥३१॥ इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ।३२। पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत । तेऽपि देवा निरातंकाः स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥३३॥ यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः। दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥३४॥ जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुल-

पर अथवा वन में शेर, चीता एवं जंगली हाथियों का पीछा करने पर ॥२६॥ क्रोध में आकर राजा ने वध की आज्ञा दे दी हो, या कैद में पड़ गया हो, अथवा महासमुद्र में जहाज पर बैठ जाने के बाद भारी तूफान आ जाय, उससे जहाज डगमगाने लगे ऐसे अवसर पर ॥२७॥ घोर संग्राम में शस्त्रों का प्रहार होने लग जाय, सब प्रकार की बाधाएँ पड़ रही हों, किसी महापीड़ा से आकुल हो ॥२८॥ इस प्रकार की सभी घोर

विपत्तियों से इस मेरे चरित्र का स्मरण करने वाला पुरुष छूट जाता है। मेरे प्रभाव से शेर आदि हिंसक डाकू तथा शत्रु ॥२९॥ मेरे चरित्र के स्मरण करने वाले पुरुष से सभी दूर भाग जाते हैं ॥३०॥ ऋषि बोले—॥३१॥ इतना कहकर भयंकर पराक्रमी वाली भगवती चण्डिका ॥३२॥ सभी देवताओं के देखते २ वहां पर अन्तर्धान हो गयी। ये सभी देवता, जिनके शत्रु नष्ट हो जाते थे, निर्भय होकर पहिले के समान अपने २ अधिकार प्राप्त करके ॥३३॥ यज्ञ भागों के भोक्ता हुए। बाकी दैत्यों का हाल सुनिये, जब देव-

विक्रमे। निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥३५॥ एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः। सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम्।३६।तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते।सायाचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धि प्रयच्छति।३७।व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर। महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३८॥ सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा। स्थितिं करोति भूतानां सैव

शत्रु शुम्भ युद्ध में मारा गया ॥३४॥ जो शुम्भ जगत् के विध्वंस पर तुला हुआ था अतुल पराक्रमी भयंकर दैत्य था, उसके मारे जाने पर और फिर महापराक्रमी निशुम्भ के भी मारे जाने पर बाकी के बचे-कुचे दैत्य पाताल में भाग गये ॥३५॥ हे राजन्! इसी प्रकार भगवती जगदम्बिका नित्य स्वरूप देवी पुनः प्रकट होकर जगत् की रक्षा किया करती है ॥३६॥ यह देवी विश्व का मोहन करती है, वही जगत्

को पैदा करती है, अपने आगे प्रार्थना पर सन्तुष्ट हो जाती है और विज्ञान एवं ऋद्धि प्रदान करती है ॥३७॥ हे राजन् ! उसी ने ही सारे ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर रखा है, महाप्रलय काल में महामारी के स्वरूप से यही देवी ब्रह्माण्ड भर में व्याप्त हो जाती है ॥३८॥ वही समय-समय में महामारी हो जाती है। अजन्मा होते हुए भी वह सृष्टिरूप हो जाती है। वही सनातनी देवी समय-समय पर प्राणियों की

काले सनातनी ॥३९॥ भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे। सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥४०॥ स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा। ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॐ ॥४१॥

स्थिति किया करती है ॥३९॥ मनुष्यों की उन्नति के समय में वह देवी घर से बुद्धि दायिनी लक्ष्मी-रूपा हो जाती है। फिर अभाव के समय विनाश के लिये अलक्ष्मी (दरिद्रता) भी बन जाती है ॥४०॥ पुष्प, धूप, गन्ध आदि सामग्रियों से पूजा तथा स्तुति करने पर यही देवी धन, पुत्र, धर्म में मति, शुभ गति आदि प्रदान करती है ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी माहात्म्ये फल स्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

* अथ त्रयोदशोऽध्यायः *

(सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान)

ध्यानम् ।। ॐ बालाऽर्कमण्डलाभासां चतुर्बाहु त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे।

प्रातःकालीन सूर्य के समान प्रकाश वाली, तीन नेत्र तथा चार भुजाओं वाली, अपने हाथों में, पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्राओं को धारण करने वाली शिवा देवी का मैं भजन करता हूँ।

'ॐ' ऋषिरुवाच ।।१।। एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ।।२।। विद्या तथैव क्रियते
भगवद्विष्णुमायया। तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः।३।
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे। तामुपैहि महाराज

ऋषि बोले—हे राजन्! इस प्रकार मैंने देवीजी का उत्तम माहात्म्य तुम्हें कह सुनाया। जिसने इस जगत को धारण कर रखा है, वह देवी इस प्रकार के प्रभाव वाली है ।।२।। वही विद्या उत्पन्न करती है

उसी भगवान विष्णु की माया ने ही हे राजन् ! तुमको, इस वैश्य को तथा और भी विवेकवान् जनों को ।।३।। मोहित कर दिया है । यह पहिले भी मोहित थे, फिर आगे भी मोहित होंगे, इसी प्रकार दूसरे भी मोहित होंगे, इसलिये हे महाराज ! उसी परमेश्वरी की शरण में जाओ ।।४।। क्योंकि वही देवी इस प्रकार आराधित होकर मनुष्यों को भोग, स्वर्ग एवं मोक्षादि प्रदान किया करती है ।।५।। मार्कण्डेयजी

शरणं परमेश्वरीम् ।।४।। आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा- ।।५।। मार्कण्डेय उवाच ।।६।। इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ।।७।। प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् । निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ।।८।। जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने । संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ।।९।। स च वैश्यस्तपस्तेपे देवी सूक्तम् परं जपन् । तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ।।१०।। अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्प-

बोले—।।६।। इस प्रकार ऋषि के वचन सुनकर उस राजा सुरथ ने ।।७।। प्रशस्यव्रतों का पालन करने वाले महाभाग मेधामहर्षिजी को प्रणाम किया । वह राजा ममतादायक राज्य के छिन जाने पर बहुत ही खिन्न हो चुका था ।।८।। वह तुरन्त हो तप करने के लिये चला गया, हे महामुने ! वह वैश्य भी तप करने चला

गया, अम्बिका के दर्शन के लिये नदी के किनारे बैठकर तपस्या करने लगे ॥९॥ वह वैश्य देवीजी के परम उत्तम सूक्त का जप करने लगा। इस प्रकार उन दोनों ने देवी के लिये नदी के किनारे मृतिका की देवीजी की मूर्ति बनाई ॥१०॥ फिर पुष्प, धूप, दीप, हवन, तर्पण आदि से धीरे २ आहार थोड़ा करते हुए, निराहार होकर, एकाग्रता से देवीजी में मन लगाकर देवीजी की आराधना करने लगे ॥११॥ उन

धूपाग्नितर्पणैः। निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ।११। ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम्। एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥१२॥ परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥१३॥ देव्युवाच ॥१४॥ यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन। मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥१५॥ मार्कण्डेय उवाच ॥१६॥ ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि। अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥१७॥ सोऽपि वैश्य-

दोनों ने बलि प्रदान के समय अपने अंगों के रुधिर का प्रोक्षण किया, इसी प्रकार संयम पूर्वक तीन वर्ष पर्यन्त आराधना करते रहे ॥१२॥ तब तो जगत् को धारण करने वाली देवी ने प्रत्यक्ष होकर दर्शन दिया और चण्डिकाजी ने कहा ॥१३॥ देवीजी बोलीं—॥१४॥ हे राजन् ! तथा कुलनन्दन वैश्य ! तुम दोनों जिस

अभीष्ट को प्राप्ति के लिये मेरी प्रार्थना करते रहे हो वह मुझसे मांगो, मैं प्रसन्न हूं तुम्हें सब कुछ दूँगी ॥१५॥ मार्कण्डेयजी बोले—॥१३॥ तब राजा ने तो दूसरे जन्म के लिये अक्षय रहने वाला राज्य मांगा और इस जन्म में शत्रु-सेना को बलपूर्वक नाश करके फिर अपने राज्य की प्राप्ति का वर मांगा ॥१७॥ वैश्य का चित्त संसार से खिन्न हो चुका था। इसलिये उस बुद्धिमान ने उस ज्ञान का वर माँगा, जिसके द्वारा

स्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः। ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥१८॥ देव्युवाच ॥१९॥ स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥२०॥ हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥२१॥ मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥२२॥ सावर्णिको मनुर्भवान् नाम भुवि भविष्यति ।२३। वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥२४॥ तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥२५॥ मार्कण्डेय उवाच ॥२६॥

संसार की अहंता ममतात्मक आसक्ति नष्ट हो जाय ॥१८॥ देवी बोली—॥१९॥ हे राजन् ! थोड़े दिनों तक तुम अपना राज्य भोगोगे ॥२०॥ बिना कठिनाई के अपने शत्रुओं का नाश करोगे, वहीं तुम्हारा राज्य भी स्थित हो जायगा ॥२१॥ फिर देहान्त के बाद सूर्य के अंश द्वारा जन्म पाकर इस पृथ्वी पर आप

सार्वणिक नाम से मनु होंगे ।।२३।। हे श्रेष्ठ वैश्य ! तुमने जो हमसे वर मांगा है ।।२४।। मैं उस वर को देती हूँ। मोक्ष प्राप्ति के लिये तुम्हें उस ज्ञान को प्राप्ति होगी ।।२५।। मार्कण्डेयजी बोले—।२६। इस प्रकार देवीजी ने उन्हें अभिलाषित वर दिये ।।२७।। फिर उन दोनों की भक्तिपूर्वक की हुई स्तुति से प्रसन्न होकर देवीजी तत्काल ही अन्तर्धान हो गई। इस प्रकार वह क्षत्रिय श्रेष्ठ राजा सुरथ देवी से वर पाकर ।।२८।।

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाऽभिलषितं वरम्। बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ।।२७।। एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।।२८।। सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ।।२९।।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः । सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ।। क्लीं ॐ ।।

फिर सुर्यदेव से उत्पन्न होकर सावर्णिक नामक मनु होगा। ।।—।।

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथ वैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

—*—

* नवार्ण जप-विधि *

सप्तशती का पाठ पूरा होने पर पहले नवार्ण जप करके फिर देवीसूक्त के पाठ का विधान है, अतः यहाँ भी नवार्ण-विधि उद्धृत की जाती है। सब कार्य पहले की ही भाँति होंगे।

विनियोगः ॥ श्रीगणपतिर्जयति ॥ ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः ॥ ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ। ॐ 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इति मूलेन करौ संशोध्य।

करन्यासः ॥ ॐ ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः

ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' करतलकर-पृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः । ॐ ऐं हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्लीं शिखायै वषट् । ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम् । ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् ।

अक्षरन्यासः । ॐ ऐं नमः, शिखायाम् । ॐ ह्रीं नमः दक्षिणनेत्रे । ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे । ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे । ॐ मुं नमः वामकर्णे । ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे । ॐ यैं नमः, वामनासापुटे । ॐ विं नमः मुखे । ॐ च्चें नमः गुह्ये । एवं विन्यस्याष्टवारं मूलेन व्यापकं कुर्यात् ।'

दिङ्न्यासः । ॐ ऐं प्राच्यै नमः । ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः । ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः । ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः । ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः । ॐ क्लीं वायव्यै नमः । ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः । ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे, ऊर्ध्वायै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ।

❋ अथ ध्यानम् ❋

ॐ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः,
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां,सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां, सेवे महाकालिकां ।।
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो, हन्तुं मधुं कैटभम् । १ ।
ॐ अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं, पद्मं धनुष्कुण्डिकां,
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं,घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं, हस्तैः प्रसन्नाननां,
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् । २ ।
ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले, चक्रं धनुः सायकं,
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे,शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ।३।इति ध्यानम्।।

इस प्रकार न्यास और ध्यान करके श्रद्धा भक्ति पूर्वक देवी की पूजा करे। फिर १०८ या १००८ बार नवार्ण मन्त्र का जप करना चाहिये। जप आरम्भ करने के पहले 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्र से माला की पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

ॐ मां माले ! महामाये ! सर्वशक्तिस्वरूपिणि !
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥ १ ॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले ! त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥ २ ॥
ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनी।
साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा ॥ ३ ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके जप आरम्भ करे। जप पूरा करके उसे भगवती को समर्पित करते हुए कहे—

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

तत्पश्चात् फिर नीचे लिखे अनुसार न्यास करे :-

करन्यासः ॥ ॐ ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ चं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ डिं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ कां अनामिकाभ्यां नमः । ॐ यैं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं चण्डिकायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

* अथ हृदयादिन्यासः *

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ ॐ हृदयाय नमः ॥
ॐ शूलेन पाहि नो देवि ! पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ ॐ शिरसे स्वाहा ॥
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके ! रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ! ॥ ॐ शिखायै वषट् ॥
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।

यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ।। ॐ कवचाय हुम् ।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ! ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः । ॐ नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ सर्वस्वरूपे ! सर्वेशे ! सर्वशक्तिसमन्विते ! ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि ! दुर्गे ! देवि ! नमोऽस्तु ते । ॐ अस्त्राय फट् ।

* अथ ध्यानम् *

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां ।
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं ।
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

* अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम् *

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ।।१।। रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः । ज्योत्स्नायै

चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥२॥ कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः । नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥३॥ दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥४॥ अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥५॥ या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥६॥ या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥७॥ या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥८॥ या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥९॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१०॥ या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥११॥ या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥ या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण
संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४॥ या देवी
सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः
॥१५॥ या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै
नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७॥ या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण
संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८॥ या देवी सर्वभूतेषु
कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९।
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो
नमः ॥२०॥ या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै
नमस्तस्यै नमो नमः ॥२१॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥ या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण
संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३॥ या देवी सर्वभूतेषु

तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२४॥ या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥ या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या । भूतेषु सततं तस्यै व्याप्ति देव्यै नमो नमः ॥२७॥ चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥ स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता । करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥२९॥ या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते । या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥३०॥

* अथ प्राधानिकं रहस्यम् *

ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः ।

॥ राजोवाच ॥ भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः । एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन्
प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥१॥ आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज । विधिना
ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे ॥२॥ ऋषिरुवाच ॥ इदं रहस्यं परममनाख्येयं
प्रचक्षते । भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप ॥३॥ सर्वस्याद्या महा-
लक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी । लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥४॥
मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती । नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रति
नृप मूर्द्धनि ॥५॥ तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा । शून्यं तदखिलं
स्वेन पूरयामास तेजसा ॥६॥ शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी । बभार
परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥७॥ सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्राङ्कित वरानना ।
विशालल्लोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥८॥ खड्गपात्रशिरःखेटैरलङ्कृत-
चतुर्भुजा । कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरःस्रजम् ॥९॥ सा प्रोवाच
महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा । नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥१०॥
तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् । ददामि तव नामानि यानि

कर्माणि तानि ते ॥११॥ महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा । निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥१२॥ इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः । एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥१३॥ तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप । सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥१४॥ अक्षमालाङ्कुशधरा, वीणापुस्तकधारिणी । सा बभूव वरा नारी,नामान्यस्यै च सा ददौ ॥१५॥ महाविद्या महावाणी,भारती वाक् सरस्वती । आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥१६॥ अथोवाच ॥ महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम् । युवां जनयतां देव्यौ, मिथुने स्वानुरूपतः ॥१७॥ इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् । हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥१८॥ ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम् । श्रीः पद्मे कमले-लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ॥१९॥ महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह । एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥२०॥ नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम् । जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥२१॥ स रुद्रः

शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः । त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ।।२२।। सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप । जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ।।२३।। विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः । उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ।।२४।। एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे । चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ।।२५।। ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम् । रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ।।२६।। स्वरया सह संभूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् । बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ।।२७।। अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप । महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।।२८।। पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः । संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ।।२९।। महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी । निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ।।३०।। नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ।।ॐ।।३१।।

।। इति प्राधानिकं रहस्यं सम्पूर्णम् ।।

* अथ वैकृतिकं रहस्यम् *

ऋषिरुवाच । ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता । सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥१॥ योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा । मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥२॥ दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा । विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥३॥ स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप । रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥४॥ खड्गबाणगदाशूलचक्रशंखभुशुण्डिभृत् । परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥५॥ एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया । आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥६॥ सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा । त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥७॥ श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला । रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा ॥८॥ सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा । चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥९॥ अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती । आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकर-

क्रमात्‌ः ॥१०॥ अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा । चक्रं त्रिशूलं परशुःशङ्खो घण्टा च पाशकः ॥११॥ शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः । अलङ्कृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम्॥१२॥सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप । पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥१३॥ गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया । साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥१४॥ दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत् । शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥१५॥ एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति । निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥१६॥ इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव । उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥१७॥ महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती । दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥१८॥ विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे । वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥१९॥ अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना । दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥२०॥ अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप । दशानना चाष्ट-

भुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥२१॥ कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये । यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥२२॥ नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ । नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥२३॥ अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः । अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥२४। महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती । ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥२५॥ महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः । पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥२६॥ अर्घ्यादिभिरलंकारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥२७॥ रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप । (बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥ तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित् ।) प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥२८॥ सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः । वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥२९॥ पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया । दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥३०॥ वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम् । कुर्याच्च स्तवनं

धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥३१॥ ततःकृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥३२॥ चरितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रम-
वाप्नुयात् । प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥३३॥ क्षमापयेज्ज-
गद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः । प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा ॥३४॥
जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः । भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमा-
हितः ॥३५॥ प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि । सुचिरं भाव-
येदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥३६॥ एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमे-
श्वरीम् । भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥३७॥ यो न
पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् । भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमे-
श्वरी ॥३८॥ तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम् । यथोक्तेन विधानेन
चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥३९॥

❀ इति वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम् ❀

——*

* अथ मूर्ति रहस्यम् *

ऋषिरुवाच । ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा । स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥१॥ कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा । देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥२॥ कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलंकृतचतुर्भुजा । इन्दिरा कमला लक्ष्मीः, सा श्री रुक्माम्बुजासना ॥३॥ या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ । तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि श्रणु सर्वभयापहम् ॥४॥ रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वांगभूषणा । रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥५॥ रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका । पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम् ॥६॥ वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी । दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव-मनोहरौ ॥७॥ कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी । भक्तान् सम्पाययेद् देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥८॥ खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा । आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च ॥९॥ अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजंगमम् । इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम् ॥१०॥ (भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।)

अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम् । तं सा परिचरेद् देवी पतिं प्रिय-
मिवाङ्गना ।।११।। शाकम्भरी नीलावर्णा नीलोत्पलविलोचना । गम्भीरनाभि-
स्त्रिवलीविभूषिततनूदरी ।।१२।। सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी । मुष्टिं
शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ।।१३।। पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाक-
सञ्चयम् । काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युभयापहम् ।।१४।। कार्मुकं च
स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी । शाकम्भरी शताक्षी सा, सैव दुर्गा प्रकी-
र्तिता ।।१५।। विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् । उमा गौरी सती चण्डी
कालिका सा च पार्वती ।।१६।। शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन् ।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ।।१७।। भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रा-
दशनभासुरा । विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ।।१८।। चन्द्रहासं च डमरूं
शिरः पात्रं च बिभ्रती । एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ।।१९।।
तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् । चित्रानुलेपना देवी चित्राभरण-
भूषिता ।।२०।। चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते । इत्येता मूर्तयो
देव्या याः ख्याता वसुधाधिप ।।२१।। जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः काम-

धेनवः । इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया ॥२२॥ व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥२३॥ सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि । पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥२४॥ देव्या ध्यानं मयाऽऽख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत् । तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥२५॥ एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि । सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत् ॥ अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् ॥

* अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम् *

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः । न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ।१। विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् । तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥२॥ पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि ! बहवः सन्ति सरलाः परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः । मदीयोऽयं

त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥३॥ जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता न वा दत्तं देवि ! द्रविणमपि भूयस्तव मया । तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥४॥ परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि । इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥५॥ श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा निरातंको रंको विहरति चिरं कोटिकनकैः । तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं जनः को जानीते जननि ! जपनीयं जपविधौ ॥६॥ चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः । कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं भवानि ! त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥७॥ न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे, न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः । अतस्त्वां संयाचे जननि ! जननं यातु मम वै मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥८॥ नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः, किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः । श्यामे त्वमेव यदि

किञ्चन मय्यनाथे धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥८॥ आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे! करुणार्णवेशि । नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्त्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥ जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि । अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥ मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि । एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥१२॥शुभम्॥

* अथ ब्रह्मशाप विमोचनम् *

ॐ अस्य श्रीचण्डिकास्तोत्रस्य ब्रह्मशाप विमोचनमंत्रस्य वसिष्ठनारदसम्वादाधिपत्योर्ब्रह्मा ऋषिः । सर्वैश्वर्यकारिणी श्रीदुर्गा देवता । चरित्रत्रयबीजम् । ह्रीं शक्तिरूपिणी कल्पितकार्यसिद्धयर्थे जपे विनियोगः । ॐ रामेः स्वरापायै मधुकैटभमर्दिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव । ॐ श्रीबुद्धिरूपिण्यै महासुरसैन्यनाशिन्यैं ब्रह्मशाप विमुक्ता भव । ॐ रं रक्तरूपिण्यै महिषासुरमर्दिन्यै शुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मशाप विमुक्ता भव । ॐ शां शवितरूपिण्यै वेदस्तुयै ब्रह्मशाप विमुक्ता भव । ॐ श्री श्रद्धारूपिण्यै फलदात्यब्रह्मशापविमुक्ता भव । ॐ मां मातृरूपिण्यैअगंलसहितायै ब्रह्मशाप विमुक्ताभव । ॐ श्रीं ह्रीं दुर्गायै सर्वैश्वर्य-

कारिण्यै ब्रह्मशाप विमुक्ता भव । ॐ क्लीं ह्रीं ॐ नमः शिवायै अभेद्यकवच-
रूपिण्यै ब्रह्मशाप विमुक्ता भव । ॐ कल्पकाले ह्रीं फट् स्वाहायै ऋग्वेद-
रूपिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।।ॐ।।

* अथ काम्य प्रयोग *

ॐ नमश्चण्डिकायै । अथ प्रयोगान्तराणि कात्यायनी तन्त्रोक्तानि । प्रतिश्लोक माद्यन्त्रयो मन्त्रजपेन्मन्त्रसिद्धिः ।।१।। मन्त्र मित्यत्र प्रणव भित्युक्तः । सप्रणव मनुलोम व्याहृति त्रयमादानन्ते तु विलोमं तदित्येवं प्रतिश्लोकं कृत्वा शतावृत्तिपाठेऽति शीघ्रं सिद्धिः ।।२।। प्रतिश्लोक मादौ जातवेदस इत्यृचं पठेत् सर्वंकामसिद्धिः ।।३।। अपमृत्युवारणायादावन्ते त्र्यम्बक मन्त्रं शतं जपेत् प्रतिश्लोके तन्मन्त्र जप इत्यन्यत्र ।।४।। प्रतिश्लोकं शरणागतेति श्लोकं पठेत् सर्वं कार्यंसिद्धिः ।।५।। प्रतिश्लोकं शूलेन पाहिनो देवि इति पाठादमृत्युनाशः अस्य केवलस्यानिप श्लोकस्य लक्षमयु सहस्रं शतं वा जपेऽपमृत्यु वारणम् ।।६।। प्रतिश्लोकं करोतुसानः शुभेत्यर्द्धं पठेत् सर्वं कार्यसिद्धिः ।।७।। स्वाभीष्टवरप्राप्तये एवं देव्यावरं लब्ध्वेति श्लोकं प्रतिश्लोकंपठेत् ।।८।। सर्वापत्ति निवा-

रणाय प्रतिश्लोकं दुर्गे स्मृतेति. पठेत् । अस्य केवलस्यापि श्लोकस्य कार्यानुसारणे
लक्षमयुतं सहस्रं शतं वा जपः ॥९॥ सर्वाबाधेत्यस्य लक्ष जपे प्रतिश्लोक पाठे
वा श्लोकोक्त पालनम् ॥१०॥ इत्थंयदा यदा बाधेति श्लोकस्य लक्षजपे महा-
मारी शान्तिः ॥११॥ ततो व्रतेऽनृपो राज्यांभ्रति मन्त्रस्यलक्ष जपे पुनः स्वराज्य
लाभः ॥१२॥ हिनस्ति दैत्य तेजांसीत्यनेन सदीप बलिदाने घण्टाबन्धने च
बालग्रह शान्तिः ॥१३॥ आद्यां वृत्ति मनुलोमेन त्रयोदशाध्यायं पठित्वा ततो
विपरीत क्रमेण द्वितीया मनुलोमेन तृतीया मित्येव मावृत्तित्रयेण शीघ्रम् कार्यं
सिद्धिः ॥१४॥ सर्वापत्तिनिवारणाय दुर्गेस्मृते त्यर्द्धं ततो वदन्ति यच्च दूरितं
भयमित्यृचं तदन्ते दारिद्रयं दुःखेत्यर्द्धमेव कार्यानुसारेण लक्ष मयुतं सहस्रं शतं
वा जपः ॥१५॥ कांसोस्मिता मित्यृचं प्रतिश्लोक पठेल्लक्ष्मी प्राप्तिः ॥१६॥
प्रतिश्लोकमवृणामस्मिन्नत्यृचं पठेदृण परिहरः ॥१७॥ मारणार्थमेव मुक्त्वा
समुत्पत्येति श्लोकं प्रतिश्लोकं पठेन्मारणोक्ता वृत्तिभिः फलं सिद्धिः ॥१८॥
ज्ञानिनः मपि चेतांसि प्रतिश्लोक जप मात्रेण सद्यो मोहन नित्यनुभव सिद्धम्
प्रतिश्लोकं तच्छलोक पाठे त्ववश्यम् ॥१९॥ रोगानशेषानिति श्लोकस्य

श्लोकपाठे सकल रोग नाश तन्मन्त्र जपेऽपि सः ॥२०॥ इत्युक्त्वा सा देवी गम्भीरेति श्लोकस्य प्रतिश्लोक पाठे पृथक् जपे वा विद्याप्राप्तिर्वाग्विकार नाशश्चः ॥२१॥ भगवत्याकृतं सर्वं मित्वादि द्वादशोत्तरशाताक्षरो मन्त्रः सर्वकामदः सर्वापत्तिवारणश्च ॥२२॥ देवि प्रपन्नार्ति हरे प्रसीदेति श्लोकस्य यथाकार्यं लक्षमयुतसहस्त्रं शतं वान्यतम संख्याजपे प्रतिश्लोक पाठेवा सर्वापन्नि-वृत्तिःसर्वकामाप्तिश्च ॥ एषु प्रयोगेषु प्रतिश्लोकं दोषाग्रे केवलमेव नमस्कारे-णऽति शीघ्र सिद्धिः । प्रतिश्लोकं कामबीजसम्पुटितस्यै कंचत्वारिंशद्दिनम् त्रिरावृत्तौ सर्वकाम सिद्धिः ॥२३॥ एकविंशति दिनपर्यन्तमुक्तरीत्या प्रत्यहं द्वाद्वशावृत्तौ वशीकरणम् ॥२४॥ माया बीज सम्पुटितस्य षट्पल्लव सहितस्य सप्तदिन पर्यन्तंत्रयोदशाबृत्ताबुच्चाटने सिद्धिः ॥२५॥ ताद्दशमेव दिन चतुष्टय मेकादश वृत्तौ सर्वोपद्रव शान्तिः ॥२६॥ प्रतिश्लोकं श्रीबीज सम्पुटित्तस्य एकोन पञ्चादशद्दिन पर्यन्तम् पञ्चदशावृत्तौ लक्ष्मी प्राप्तिः ॥२७॥ प्रतिश्लोकम् वीग्वीजसम्पुटितस्य शतावृत्याविद्यो प्राप्तिः ॥२८॥ इति कात्यायनी तन्त्रोक्त प्रयोग विधिः ॥

अथ नवचण्डी-शतचण्डी-सहस्रचण्डी-प्रयोगक्रमः,

नवरात्रव्रतपूजाप्रयोगश्च

तत्र नवरात्रे प्रतिपद्यन्यत्र च सुमुहूर्तेऽह्न सुशोभितायां सुलिप्तायां भूमौ मण्डपं कूटं व विरच्य कदलीस्तम्भसुवितानादि शोभितम् च यथासम्भवं कृत्वा बीजप्ररोहणयोग्यां मृदम् किञ्चिद गोधूममिश्रितम् यवबीजं पञ्चरत्नपञ्चपल्लवपञ्चगव्यदूर्वाताम्बूलकुंकुमवस्त्रनैवेद्यधूपदीपादिसंभारांश्च संपाद्य तिलतैलो-द्वर्तनैन कृतस्नानः कृताह्निकः सपत्नीको यजमानो जलपूर्णकलशहस्तः शान्तिपाठगीतवादित्रघोषपुरस्सरम् पश्चिमदिग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्यासने प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य दीपम् प्रज्वलय्य प्रतिष्ठाप्य, अप-वित्रः पवित्रोवेति आत्मानम् पूजासामग्रीं च संप्रोक्ष्य आचम्य प्राणानायम्य गुरून्ध्यात्वा कृतमगलतिलको हस्तेऽक्षतपुष्पद्रव्याणि गृहीत्वा, आनोभद्रादीन् मगलमन्त्रान् सुमुखश्चेत्यादि मन्त्रांश्च पठित्वा श्री गणपतये पुष्पांजलि समर्प्य स्वात्माग्रे भूमौ शंखचक्रे चन्दनेन लिखित्वा "ॐ आधारशक्तये नमः" इत्याधारशक्ति सम्पूज्य तत्रार्धपात्रं संस्थाप्य शुद्धजलेनापूरयेत् 'गंगे च यमुने चैवेति' गन्धपुष्पाक्षतादि निक्षिप्य अर्घपात्रं सम्पन्नम् सुसम्पन्नमस्तु । ततः सूर्यायार्घं दत्त्वा संकल्पम् कुर्यात् । अद्येत्यादि देशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रो-ऽमुकराशिरमुकोऽहं सपत्नीकः सकुटुम्बस्य ममेहजन्मनि महामायाप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकविपुल-धनधान्यपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसंततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीशत्रुजयकीर्तिलाभप्रमुखचतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थं श्री महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थमद्यप्रभृति महानवमीपर्यन्तं प्रत्यहमेककालं द्विकालम् त्रिकालं वा श्रीदुर्गापूजोपवासनक्तैकभक्तान्यतमनियमाखण्डदीपप्रज्वालनकुमारीपूजनसहितम् श्रीदुर्गासप्तशती स्तोत्रपाठसहितमन्ते बलिदानहोमादि यावत्कुलाचारप्राप्तकृत्योपेतम् श्रीनवचण्डीयज्ञं करिष्ये (अत्र शत-

सहस्रचण्डीयागचिकीर्षायाम नवस्थाने तत्तत्पदं प्रयोज्यम्, ग्रहमखचिकीर्षायां सग्रहमखमित्यपि योज्यम्, कुलधर्मे प्राप्तभैरवनृसिंहादि-दैवत्यहोमचिकीर्षायां 'नृसिंहभैरवादि प्रीत्यर्थं' होमम् च तन्त्रेण करिष्ये, इति संकल्पयेत्, तदंगत्वेन श्री दुर्गापूजनार्थं घटस्थापनम् च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्धयर्थं गणपति-पूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं वसोर्धारापूजनं नान्दीश्राद्धं दुर्गासप्तशतीपाठाद्यर्थमाचार्यब्राह्मण-वरणम् च करिष्ये। ततो गणपति पूजनादारभ्य दिग्रक्षादि मण्डपप्रोक्षणान्तम् कर्म स्मार्तगुह्यविधिना विधाय, ततः प्रधानपूजनार्थं (सकल्पःस्वस्तिवाग् विप्रवरणम् भूतानिस्सृतिः पञ्चगव्यैर्भूमिशुद्धिर्मुख्यदैवत पूजनम्, इति धर्मसारसिन्धूल्लिखितस्मार्तकर्मक्रमबोधकवचनप्रामाण्यात्) भूशुद्ध्यादिन्यासान्कृत्वा नवार्णन्यासान्वा कृत्वा पुनर्यथाचारप्राप्तं भूतशुद्धि प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमातृकादिन्यासांश्च विधाय वेद्यां चतु-ष्किकायां वा सर्वतोभद्रमण्डलमष्टदलम् वा विलिख्य तत्र ब्रह्मादिमण्डलदेवताः संस्थाप्य तत्र कलशस्थापन-विधिना कलशम् स्थापयेत् तत्र पूर्वं 'मही द्यौरिति' भूमि स्पृष्टवा तदुपरि अंकुरारोपणार्थं शुद्धमृदम प्रक्षिप्य तत्र-'ओषधयः समवदन्त-इति किञ्चिद् गोधूममिश्रितान् यवान् उदकसस्थान् क्षिप्त्वा तदुपरि किञ्चिन्-मृत्तिकां दत्वा पुन किञ्चिद् गोधूमयुतान् यवान् पञ्चवारम् सप्तवारम् वा प्रक्षिप्य तद्योग्यां बीजमिश्रितां मृत्तिकां पुनदद्यात् एवम् बीजवापनम् विधाय अवशिष्टयथाविधिपुरस्सरम् कलशम् संस्थाप्य तत्र वरुणमावाह्य सपूजयेत् ततः [यत्र सर्वतोभद्रं न विरच्यते तत्र नवचण्ड्यां तु पृथिव्याम् बीजवपनयोग्यमृद्येव घटस्थापनम् कार्यम् इति ध० सिं० नवरात्रारम्भप्रयोगे] कलशदेवताः स्मृत्वा सम्पूज्य च कलशं प्रार्थयेत्। ततः कलशो-परि पूर्णपात्रे यन्त्रं विलिख्य तत्र ष्टादशभुजामष्टभुजां वा सिंहारूढां सौवर्णी देवीमूर्तिमग्न्युत्तारणप्रतिष्ठा-पूर्वकं प्रतिष्ठाप्य पूजयेत्। तद्यथा स्ववामे कर्पूरादियुतवारिपारपूर्णं पूजाकलश सम्पूज्य सप्रार्थ्य च कलश-मुद्रां प्रदर्श्य शखं घण्टां च पूजयेत्। ततशंखोदकेनात्मानं पूजासामग्रीं, च सम्प्रोक्ष्य पीठपूजां कुर्यात्, कलशस्थापितमूर्तौ देवीमावाह्य पञ्चामृतस्नानपूर्वक सर्वोपचारैः सम्पूजयेत् ततोऽङ्गपूजां कृत्वाऽष्टोत्तर-

शतनामभिश्च समर्च्यावरणपूजां विदध्यात् । ततो 'नमोदेव्यै' इत्यादि मन्त्रैर्नमस्कृत्य छत्रचामरगीतवादित्रादिभिः सम्प्रसादयेत् । सति सम्भवे यथा स्थाने खड्गाद्यायुधानि यथालाभं देवीवेदिसमीपे निदध्यात् तेषां पूजनम् च कुर्यात्] नारिकेलफलादिभिः पुष्पांजलिं दत्वा [केचित्तु पाठसमाप्तौ प्रतिदिनम् सायमेवारार्तिकं मन्त्रपुष्पांजलिञ्च सर्वदेवानां कुर्वन्ति तत्र द्विकालार्चनस्याऽपि सम्भवादेतदेव युक्तं प्रतिभाति 'मन्त्र हीनम् क्रियाहीनम् आवाहनम् न जानामि, इत्यादिभिः सम्प्रार्थयेत् ततोऽनया पूजया श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताः प्रीयन्ताम् । ततः कुमारीपूजार्थं संकल्पं कृत्वा तां पूजयेत् प्रत्यहमेकोत्तरवृद्धया पूजयेत् । यथा शक्ति वा पूजयेत् । ब्राह्मणसुवासिन्यपि पूज्या । ततः पाठकजापकब्राह्मणानां पुस्तकेषु वाङ्मयीं देवीं पूजयेत् । वृतब्राह्मणाश्च संकल्पम् विधाय स्व स्व पाठं जपं च कुर्युः । यद्ययं शतचण्डीयागः सग्रहमखश्चेत्तर्ह्येतदनन्तरमेव ग्रहावाहनपूजनं कृत्वा तत ईशाने रुद्रकलशे रुद्रं पूजयेत् । [शतचण्ड्यां सहस्रचण्ड्यां च मण्डपकरणे तु विधिवत्तोरणमण्डपपूजनम् विधेयं विधिवत्स्तम्भादियुक्तमण्डपाऽनुष्ठानासम्भवे कूटमेव कुर्यात 'मण्डपं कूटमेव वा इति लैङ्गोक्ते, कूटं छायामात्रम् कटमेव शालाशब्देन व्यवह्नियते केचित् तत्रापि पताकाद्यलङ्कारादयो मण्डपधर्मा भवन्त्येव यवेषु ब्रीहिधर्मा इव तेषामपूर्वप्रयुक्तत्वात् तस्य च वैकल्पिके विद्यमानत्वात् । तत्र पूर्वं वास्तुपूजनार्थं तोरणादि सर्वमण्डपम् सम्पूज्य ततः दिक्षु दशासु पताकाद्यलंकृतम् कृत्वा प्रतिद्वारम् घटादिक संस्थाप्य दशदिक्पालान् प्रपूज्य वास्तुमण्डलदेवतापूजनं कुर्यात् तत्र तु स्वलङ्कृतमण्डपे एव प्रधानदेवपूजनमुचितम् अतोऽत्र गणपतिपीठदेवार्चनं विधाय मण्डपं वास्तुमडलम् च सम्पूज्य ततः प्रधानदेवपूजनम् ततो ग्रहस्थापनम् रुद्रकलशपूजनम् चतुष्षष्टियोगिनीभैरवक्षेत्रपालपूजनञ्च तत्तत्पीठे कुर्यात् जलयात्रादिकमपि तत्र विधेयम् । नवरात्रे तु नवम्यामेव होमोऽतः शतचण्डीकरणे तु पूर्णे नवरात्रे एकस्मिन्नहनि पाठद्वयं विधेयं दशभिर्ब्राह्मणैः, तिथिक्षये तु दिनद्वये प्रत्येकं द्वौ द्वौ पाठौ विधेयौ येन शतसंख्यापूर्णा स्यात् । केचित्त्वष्टम्यामारभ्य होमं नवम्यां समापयन्ति 'तद्यथा कुलाचारप्राप्तम् ।

अथ होमः—देशकालौ स्मृत्वा ब्राह्मणद्वारा कारितस्य शतचण्डीजपस्य सिद्ध्यर्थं जपदशांशेन तिलादि-मिश्रितपायसद्रव्येण होमम् करिष्ये इति संकल्प्य केचित्त्वत्रापि पुण्याहवाचनं कारयन्ति, [पूर्वदिने यदि नवग्रहस्थापनं न कृतम् चेत्सग्रहमखशतचण्डीयागचिकीर्षा च स्यात्तर्हि सांप्रतमीशान्यां नवग्रहमण्डलं कृत्वा तदीशाने रुद्रकलशं च स्थापयेत् कृते त्वस्मिन्नवग्रहमण्डले पूर्वमग्नि प्रतिष्ठाप्य ततस्तेषां पूजनम् विधेयम् ततोऽन्यत्संपाद्यम्] ततोऽग्नि प्रतिष्ठाप्य कुशकण्डिकाऽन्वाधानकरणानन्तरमाज्यभागान्ते द्रव्यत्यागं कुर्यात् । पूर्वं नवग्रहादि-होमं विधाय ततः पूर्वं मूल [नवार्ण] मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं हुत्वा जपदशांशसंख्यया च पायसतिलपलाशपुष्पसर्षपपूगीफलमधुदाडिमलाजदूर्वाङ्कुरेक्षुफलयवबिल्वफलरक्तचन्दनगुग्गुलुद्रव्यैर्यथाप्राप्त-द्रव्यैर्वा मिश्रितेन तथा तिलमिश्रितेन पायसेनाज्येन च सप्तशतीस्तोत्रमन्त्रैर्हुत्वा [अत्राऽध्यायसमाप्तावुत्थाय पत्रपुष्पलवंगपूगीफलताम्बूलदलैर्होमः कार्य इति प्रत्यध्यायसमाप्तौ नत्वेकाध्यायसमाप्तावेव] पुनर्मूलमन्त्रेणा-ष्टोत्तरशतमाहुतीर्हुत्वा सर्वतोभद्रमण्डलदेवताहोमम् कुर्यात् । अयं होमःसर्वतोभद्रमण्डलकरणपक्षे एव नत्वष्ट-दलविधानपक्षे तत आधारशक्तिपीठदेवताभ्यो महाकाल्याद्यावरणदेवताभ्यश्च जुहुयात् एवं वास्तुयोगिनी-क्षेत्रपालादिभ्यश्च हुत्वा, एवम् [स्विष्टकृदादिप्रायश्चित्तान्तम् हुत्वा बर्हिहोमम् संस्रवप्राशनम् प्रणीता-विमोकम् च कृत्वा ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात् । [एष एव क्रमः सं० दी०] इन्द्रादिनवग्रहक्षेत्रपालेभ्यो बलिं दत्त्वा हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्णाहुतिं जुहुयात् । ततो बसोर्धारां हुत्वा तनूपाऽअग्नेत्यादि मन्त्रैः पाणिभ्यां प्रतपनपूर्वकम् मुखमार्जनमंगालम्भनमुदकस्पर्शञ्च कुर्यात् । भस्मना त्र्यायुषाणि कृत्वा मूलमन्त्रेण होम-दशांशेन केवलदुग्धेन दुग्धमिश्रितेन जलेन वा 'तर्पयामि' तेनैव मन्त्रेण तर्पणदशांशेन 'मार्जयामीति' मार्जनं-कुर्यात् । उत्तरांगत्वेन पुनर्देवानग्निं च सम्पूज्य देव्यै फलादिबलिं दद्यात् । तत आचार्यादिभ्यो वस्त्रादिभिः, सम्पूज्य दक्षिणां दद्यात् । भूयसीञ्च संकल्पयेत् ततो घृतच्छायादर्शनं कुर्यात् । तत आचार्यादयः कलशोदकेन

सपत्नीकम् सकुटुम्बम् भद्रासनोपविष्टं वैदिकैः पौराणिकैर्मन्त्रैश्चाभिषिक्तं कुर्युः [अभिषेकानन्तरम् दक्षिणादानमुक्तं मात्स्ये, वासिष्ठ्यां तु दक्षिणादानानन्तरमभिषेक उक्तः धर्मसिंधुसारे तु मानस्तोके तिभूतिश्च देवपूजाविसर्जने, श्रेयोग्रहो दक्षिणादिदानम् कर्मेश्वरार्पणमिति क्रमकारिकायां श्रेयोग्रहणानन्तरम् दक्षिणादानमुक्तम्, एवं स्थितौ किमप्येकं मतमवलम्ब्य कार्यं कार्यं ।

ततः श्रेयोग्रहम् देव्यै कर्मार्पणं च कृत्वा आरार्तिकम् मन्त्रपुष्पाञ्जलिञ्च विधाय क्षमापयेत् । कुमारीर्ब्राह्मणसुवासिनीश्च भोजयेत् । संकल्प्य वा दशम्यां पारणादिने एव भोजयेत् (कुमारीपूजनन्तु प्रात्याहिकमावश्यकम्) देव्या विसर्जनम् तु दशम्यां अन्यदेवानामग्नेश्चाऽपि दशम्यामेव विसर्जनं कार्यम्, एवं करणे तु सुसम्पन्नपक्वान्नं भोज्यमपि तेषामग्रेमिवेदितं स्यात् अत्रदिने स्व स्व कुलाचारानुसार लवंगघृतादिभिः केचिद्दुर्गाज्योतिरपि वन्हेरुपरि कुर्वन्ति केचित्त्वष्टम्यां, तद्यथाकुलाचारप्राप्तम् यद्यत्कर्म विधेयम् स्यात्तत्तत्कर्तव्यं, अत्रैव सुवासिनीपूज्यपितृष्वस्रादिद्वारा महानीराजनम् [आरती] निर्मुञ्छनं च [न्योछावर] कारयन्ति । ब्राह्मणैश्च यथांकुराः प्रदातव्या आशिषश्च ।

अथाऽत्रावश्यकज्ञातव्यविषया निर्दिश्यन्ते

१—पारणं दशम्यां कार्यं 'आश्विने मापि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकं, प्रतिपदादि क्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत्, त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादिदिनत्रयम्, । इति धौम्यवचनात्, 'नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्धया पूजाजपादिकम्, । इत्यादि वचनैर्नवमीपर्यन्तं प्रधानभूतपूजाद्युक्तेरुपवासादेश्च पूजाद्यंगत्वेन नवमीपर्यन्तस्यैवोचितत्वात् 'पूजादिकं' मित्यत्रादिशब्देनोपवासस्याऽपि ग्रहातुमुचितत्वात्, त्रिरात्रव्रतेऽपि नवम्या

अभ्युपोष्यत्वाच्च, न च नवरात्रे उपवासाऽनुष्ठाने मानाऽभावः—एवं च विन्ध्यवासिन्या नवरात्रोपवासतः इति भविष्योक्तत्वात् नवरात्रसमाख्यातश्च नवम्यामभ्युपोष्यत्वाच्च तिथिह्रसेऽपि नवतिथीनामुपोष्यत्वान्नवरात्रसमाख्याया अक्षतेः। नवम्यां पारणं कुर्याद्दशमी मिश्रिता न चेत्, इत्यादीनि, वचनानि तु लौहाभिसारिकनन्दादिचतुष्टयविषयकाणि तस्याष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेः। यानि तु नवम्यां पारणाविधायकानि वाक्यानि कैश्चाल्लिखितानि तानि हेमाद्र्यादिविरुद्धत्वान्निर्मूलानि, समूलत्वेऽपि यदा दिनद्वये नवमी तदा पूर्वदिने उपोष्य द्वितीयदिने नवमीमध्ये एव पारणा कार्या नतु तिथ्यन्ते शिवरात्रिव्रते चतुर्दश्यां पारणावदित्येवंपरतया व्याख्येयानीत्यलं।

२—कुत्रचिदप्यत्र दुर्गाकृतये दीपकद्वयप्रज्वालनस्य प्रमाणाऽभावात्, अखण्डैकदीपकप्रज्वालनम् कार्यं ये केचित्कगौलीगंगापुरादि (जयपुर) षु घृतस्य तैलस्य चेत्थं दीपकद्वयप्रज्वालनं मन्यन्ते तत्तुतेषामज्ञानविलसितमवैधचेष्टितमेव, अतः सर्व साधारणप्रयोगेषुघृतस्थाने वैकल्पिके तैलस्य विद्यमानत्वाद् द्वयोरेकतरस्य वैधत्वाच्च सत्यपि घृतदीपे द्वितीयतैलदीपस्य प्रज्वालनं गंगापुरस्थश्रीश्यामलालवक्कीलस्य शतचण्डयां वन्दतः परास्ताः। दीपकस्थापनं देशश्चोक्तः पारिजाते आत्मनो दक्षिणेभागे तुलस्यादि निधापयेत्, घृतदीपं तु तत्रैव तैलस्य तु विपर्ययः आत्मनः स्वस्य, यजमानस्येत्यर्थः। घृताभावे तैलस्याऽपि दीपः प्रज्वालयितुं शक्यते स तु वामभागे स्थाप्यः। ३—कलशस्थापनं रात्रौ न कार्यं 'न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्'। ४—प्रतिपदि वैधृत्यादिनिषेधो यद्यपि देवीपुराणे वर्तते प्रतिपद्याश्विने मासि भवेद्वै धृतिचित्रयोः, आद्यपादौ परित्यज्य प्रारभेन्नवरात्रकं। सम्पूर्णाप्रतिपद्देव चित्रायुक्ता भवेद्यदि, वैधृत्या वापि युक्ता स्यात्तदा मध्यन्दिने रवौ अभिजित्तु मुहूर्तं यतत्र स्थापनमिष्यते—इत्यादिवचनमनुसृत्यकलश स्थापनमनुष्ठेयं। चित्रादिनिषेधे मूलं चिन्त्यमिति सिन्धुः। ५—मृदादिनिर्मितायां वेद्यां चतुष्किकायां

वा विरचितसर्वतोभद्रमण्डले कलशस्थापनम् कार्यं 'वेद्यां विरचिते रम्ये सर्वतोभद्रमण्डले घटं संस्थाप्य विधिना तत्रावाह्यार्चयेच्छिवाम् इति मन्त्रमहोदध्युक्तेः। मृन्मयी प्रतिमा चेत्तत्रैव मण्डले दार्वादिमयासने स्थाप्या, सौवर्ण्यादिप्रतिमा चेत्तस्याः 'पूजामण्डलकुम्भस्थेति' देवीपुराणोक्ते कुम्भोपर्येव पूजाविधानान्न तत्पूजार्थं पृथगासनदानमिति। वेदिकोणेष्वपरांश्चतुरः कलशान् स्थापयेदित्युक्तं विष्णुधर्मोत्तरे। तेषामधो मृत्तिकायां गोधूममिश्रितयववापनं कार्यं। एक एव कलशः स्थाप्यश्चेद्वेदेश्चतुष्किकायास्समन्ताद् वा यवान् वापयेत्। ६—दुर्गाप्रतिमाया दिग्विशेषाऽभिमुखत्वानियमो दुर्गाभक्तितरंगिण्यां देवी पुराणे-स्थाप्या स्याच्छुभदा दुर्गा पूर्वा स्याज्जयवर्धिनी पश्चिमाऽभिमुखी नित्यं, न स्थाप्या सौम्यदिङ्मुखी। ७–नवरात्रे तु होमो नवम्यामेव युक्तः प्रतीयते। नवरात्राद्भिन्नसमये, 'अष्टमीनवमीचतुर्दशीपौर्णमासीषु यथासमाभिर्भवति तथारम्भः कर्तव्यः' इति नैमित्तिकानुष्ठेयत्वेऽपि साम्प्रदायिकानां तथारम्भकर्तव्यत्वस्य बोधने नवम्यास्तिसृष्वेकतमाया ग्रहणात्। 'अष्टम्यां च चतुर्दश्यां, नवम्यां चैकचेतसः' इति नवम्यास्तिथेर्माहात्म्यस्य स्वयं देव्यैवोक्तत्वात्। नवरात्रे देवीपूजोपवासहोमादीनाम् नित्यकाम्याधिकारविधिभ्यां प्राधान्यबोधनात्। 'वर्षे २ विधातव्यं, स्थापनं च विसर्जनम्'–इत्यत्र स्थापनप्रभृतिविसर्जनान्तपूजाया नित्यत्वं बोध्यते। कालिकापुराणेऽपि 'यो द्वेषादथवाऽऽलस्याद् देवीं दुर्गां महोत्सवे न पूजयति'० इत्याद्युक्तम् तत्रैव च 'अन्यैरपि सदा देव्याः काले [नवरात्रे] कार्यं प्रपूजनम्' इति काम्यत्वमुक्तम्। नवमीतिथिपर्यंतम् वृद्ध्या पूजाजपादिकम् एकोत्तराविवृद्धया तु नवमीं यावदेवतु चण्डीपाठम् जपेच्चैव जापयेद्वा विधानतः इति हेमाद्रौ देवीपुराणात्। न च तत्रैव पूर्वपद्ये 'यदाद्ये दिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम्, द्विगुणन्तु द्वितीयेऽन्हि त्रिगुणम् तत्परेऽहनि' इत्याद्यदिवसेन प्रतिपदाया ग्रहणमिति वाच्यम्, अग्रे नवमीतिथिपर्यन्तमित्युक्तौ नवमीपदोपादानस्य व्यर्थतापत्तेः शतचण्ड्यांच पाठकत्वेन दशब्राह्मणानां वरणत्वस्य शास्त्रप्रतिपादनात्, अतोऽत्राद्यदिवसपदेन

पञ्चम्या ग्रहणात् । ननु 'अथ नवरात्रे शत-चण्ड्यादिविधानेन देव्या आराधनम् चिकीर्षुं प्रति तद्विधानं प्रदर्शयाम' इत्युपक्रम्य 'एकं द्वे त्रीणि चत्वारि जपेद्दिनचतुष्टयम् रूपाणि क्रमशस्तद्व-पूजनाविकमाचरेत्, पंचमे दिवसेप्रातर्होमं कुर्याद्विधानतः' इत्यादिस्मृतिकौस्तुभस्थरुद्रयामलोक्तवचनानां का गतिर्भविष्यतीतिचेन्न तत्र नवरात्रव्रताशक्ताधिकारिकानुकल्पसमविषयत्वेन तेषां योज्यत्वात्, एवं च शतचण्डीयागेन सह नव-रात्रव्रताशक्ताधिकारिकपञ्चसप्तत्रिरूपपक्षानुकल्पस्य ऽपि सिद्धत्वात्, किं च नवम्यां होमे तु दशम्यां पारण-विसर्जनयोरपि न क्षति रित्येकवाक्यत्वात् सर्वमनवद्यम् । नवम्यामेव होमकरणान्नवरात्रसमाख्याया अप्य-क्षतित्वात् । नवरात्रे नवम्यतिरिक्ततिथौ तु पञ्चदिनसाध्यशतचण्डीयागस्य पूर्णत्वात्, महाशब्दो नवम्यां च लोके ख्यातिं गमिष्यति, पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत्' इति देवी-कालिकापुराणोक्तेर्महा-ष्टम्यां विशेषपूजाविधेः कथं सगतिः संपत्स्यत इति विषयेऽत्र यद्युक्तमयुक्तं वा तद्विचारयन्तु धीधना विद्वां-सो नात्राऽस्माकं कोऽपि विशेषाग्रहः । ८-अत्रशिष्टाऽऽचाराद्वेदपारायणमपि कार्यं । ९-भवानीसहस्रनामपाठो-ऽप्युक्तो रुद्रयामले । १०-विसर्जनं दशम्यां कार्यमित्युक्तं प्राक् तत्र मृदादिप्रतिमाया विसर्जनं कृत्वा गीतवा-द्यमन्त्रघोषपुरस्सरं स्रोतसि प्रवाहयेत् कलशमुत्थाप्य तत्रैव रक्षेत् । तत आगतं प्रक्षालितपाणिपादमाचान्तम् सकुटुम्बंसपत्नीकमासनोपविष्टंयजमानं ब्राह्मणाःस्थापितकलशोदकेनाऽभिषिञ्चेयुर्यवांकुरान्ददतस्तिलकाशी-र्वादं च कुर्युः । पूज्यस्येऽभिनयादिद्वारा महानीराजनं निमुञ्छनं चात्रापि वा कारयेयु पुर्वसपन्नभोज्यान्नं निवेद्य देवोदेवाग्निपुरतस्तदा विसर्जनं कार्यमिति न विस्मर्तव्यम् । परम्परापूजितायाः धात्वादिप्रतिमायास्तु केवल-मुत्थापनं कार्यं न विसर्जनम् । मृदादिप्रतिमाञ्च 'ॐ दुर्गायै नमः' इत्यैशान्यामेकपुष्पप्रक्षेपेण विसर्जयेदिति विशेषः । ततो ब्राह्मणान् सुवासिनीः कुमारीश्च भोजयित्वा बन्धुभिः सह स्वयंभुञ्जीत । ११-ईदृश प्रमाणं कुत्राऽपि न लभ्यते यत् कस्मिन् श्लोके कः पदार्थो विशेषतया हवनीयः, इति महानिबन्धोल्लेखाऽनुसारं

हवनीयरक्तचन्दनखण्डादीन् पायसमिश्रितान् कृत्वैव ते होतव्याः । पायसमेकादशाध्याये,मधु गर्ज गर्जेतिमन्त्रे, दाडिमबीजानि च 'दाडिमीकुसुमोपमा' इत्यत्र होतुं यदुच्यते, तदपि प्रमाणाऽभावादुपेक्ष्यम् । १२—'प्रातः-स्नायी जितद्वन्द्वस्त्रिकालं शिवपूजकः । जपहोमसमायुक्तःकन्यकां भोजयेत् सदा,—इति देवीपुराणोक्तेर्होम-विधिरपि प्रत्यहमनुष्ठेयत्वेन निश्चीयते । (शिवपूजक इत्यत्र शिवा च शिवश्च शिवौ,तयोरित्येकशेषो बोध्यः) अतस्तिलाज्येनाष्टाविंशतिसंख्ययाऽष्टोत्तरशतसंख्यया वा देवीमन्त्रेण होमः प्रत्यहमनुष्ठेयः न चैवमष्टमीन-वम्योर्होमविरोधः, तस्य देवीमाहात्म्यगतश्लोकैः प्रतिश्लोकमनुष्ठेयमहाहोमविषयत्वादिति । अन्यत्सर्वं ज्ञातव्यं महानिबन्धेभ्यो ज्ञातव्यम् । १३—कवचकीलकार्गलरहस्यत्रयश्लोकैरपि होमविधानम् निबन्धेषु स्वी-कृतम् । १४–तन्त्रान्तरे "चण्डीस्तवे प्रतिश्लोकमेकैकाहुतिरिष्यते, रक्षाकवचगैर्मन्त्रैर्होमम् तत्र न कारयेत् । मौर्ख्यात् कवचगैर्मन्त्रैःप्रतिश्लोकम् जुहोति यःस्याद् देहपतनं तस्य नरकम् प्रतिपद्यते । अन्धकाऽऽख्यो महादैत्यो दुर्गाहोमपरायणः कवचाहुतिजातपापान्महेशेन निपातितः अत्र रक्षाकवचगैर्मन्त्रैरित्यनेन शूलेन पाहि नो देवीत्यादिचतुर्भिर्मन्त्रैर्होमम् न कारयेदिति तात्पर्यम्'परिमिमे श्लोकाःधर्मशास्त्रमहानिबन्धेषु तु नोल्लिखिता दरीदृश्यन्ते कथमिति तु विद्वांस एव विदांकुर्वन्तु । १५-कृतेषु सम्पुटितपाठेषु हवनंसम्पुटितमसम्पुटितं वाकथम् विधेयमिति तत्र प्रमाणान्युद्धियन्ते-तथा हि 'प्रतिश्लोकञ्च जुहुयात् पायसं तिलसर्पिषा' इति सप्तशतीस्थस्त-वरहस्ये । 'सप्तशत्या दशावृत्या प्रतिमन्त्रम् हुतं चरेत्' । इति मन्त्रमहोदधिः । चण्डीसप्तशतीजाप्ये होममन्त्रो नवाक्षरः कथितः पूजनाऽध्याये तेन होमो भवेदिह 'नमो देव्यै' अथवायं भवेद्धोमः श्लोकैः स्तोत्रनिरूपितैः, इति डामरकल्पे पक्षान्तराण्युक्तानि,देवीपुराणे तु-जयन्तीमन्त्रेण होमम् कारयेदित्युक्तम् । डामरतन्त्रे-होमयेद्वि धिवद् भक्त्या दशांशेन नृपोत्तम,रुद्राध्याये यथाहोमम् मन्त्रेणैकेन साधयेत्, तथास्तोत्रजपे होमम् श्लोकैनैकेन साधयेत्, यद्वा सप्तशतीं जप्य होममन्त्रो नवाक्षरः । रुद्रयामलेऽपि-'प्रतिश्लोकम् च जुहुयात् सर्वं द्रव्याणि च

क्रमात् नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्यै इतीति च, तत्रैव च शतचण्डीविधौ चण्डीपाठस्य होमम् तु प्रतिश्लोकम् दशांशतः। संपुटव्यवस्थायां मरीचिकल्पे पुरश्चरणविधौ तदन्ते हवनं कुर्यात् प्रतिश्लोकेन पायसा' इत्यादिभिः प्रमाणैस्त्विदमेव निश्चीयते यत् सम्पुटितपाठेष्वसंपुटितपाठेषु च कृतेषु हवनन्तु स्तोत्रनिरूपितैः श्लोकैः कार्यम्, नवाक्षरेण, जयन्तीत्यादिना, नमो देव्यै, इति मन्त्रेण वा। नात्र कुत्रापि सम्पुटितव्यवस्था प्रदत्ता, सम्पुटितव्यवस्था चेत्तर्हि तां ब्रुवीरन् पक्षान्तराणि च न ब्रुवीरन्। क्वचित् २ सप्तशतीपुस्तकेषु हरगौरीतन्त्रनाम्ना सम्पुटहोमे मन्त्रसंख्या मुद्रिता वर्तते तथा हि–'मन्त्रपुटं बीजपुटं दुर्गास्तोत्रं पठेत्सदा मन्त्रबीजपुटा दुर्गा कामनासिद्धिदा सदा। होमकाले सदा मन्त्रं दुर्गामन्त्रं पृथक् हुनेत्। कामनाबीजसंयोगो दुर्गा मन्त्रेण संहुनेत् दुर्गास्तवनमन्त्राणां संख्या सप्तशतम् भवेत्। कामनामन्त्रसंख्या च शतम् चैव चतुर्दश। मध्ये मन्त्रान् सप्तशतं होमकाले तु योजयेत्। पाठे मन्त्रपुटं वाच्यम् होममन्त्राः पृथक् पृथक्। होमसंख्या च मन्त्राणां शतम् वै चैकविंशतिः। पाठे बीजपुटं वाच्यम् होमे बीजपुटं हुनेत्'॥

इति वाक्यकदम्बेनायमेव निष्कृष्टोऽर्थः प्रतीयते यत् सम्पुटितपाठेषु हवनमपि सम्पुटितमेव कारयितव्यम्। इह च तान्त्रिकी भाषा वर्ततेऽतः'होमसंख्या च मन्त्राणां शतम् वै चैकविंशतिः कामनामन्त्रसंख्या च शतम् चैव चतुर्दश, मध्ये मन्त्रान् सप्तशतम् होमकाले तु योजयेत्' इति, वाक्यत्रयेणेदमेव ज्ञेयं भवति यत् पूर्वं सम्पुटमन्त्रान्ते स्वाहाकारः,ततो मध्ये सप्तशताश्लोकान्ते स्वाहाकारः,अन्ते सम्पुटान्ते च स्वाहाकारःकर्तव्यः। शत वै चैकविंशतिरित्यस्यैकविंशतिवार शतमर्थाच्छतानामेकविंशतिः, शतं चैव चतुर्दशेत्यस्य चतुर्दशशतमित्यर्थश्च, तान्त्रिकभाषावशादर्थसंगतिवशाच्च बोध्यः, परमत्रैकेयमाशंका हृद्युदेति यदियं व्यवस्था महानिबन्धप्रणेतृभिः स्वस्वग्रन्थेषु नोल्लखिता, अर्वाचीनेन धर्मसिन्धुकारेणाऽपि नोल्लिखिता। यद्यपि तन्त्राणां वरिवस्यारहस्यप्रकाशे भास्कररायप्रणीत-सौभाग्यभास्कराख्य-ललितासहस्रनामभाष्ये च परमार्थतस्तु

तन्त्राणां स्मृतित्वाऽविशेषेऽपि मन्वादिस्मृतीनां कर्मकाण्डशेषत्वं तन्त्राणां ब्रह्मकाण्डशेषत्वमिति सिद्धान्तात् तन्त्राणां धर्मशास्त्रेऽन्तर्भावात्। मनुस्मृतौ २।१। पद्यस्थ-कुल्लूकभट्टकृतटीकायाञ्च 'श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च' इति हारीतवचनम् लिखितं दृश्यते, यद्यपि सम्प्रति हारीतस्मृताविदम् वचनं नोपलभ्यते परम् कुल्लूकभट्टस्य प्राचीनप्रामाणिकग्रन्थकर्तृत्वादिदम् निर्णीयते यत् कुल्लूकभट्टानामग्रे तत् स्थितमासीदिदानीं तल्लेखकप्रमादवशाद्विनष्टमिति। इत्थं स्मृतिवत् तन्त्राणां प्रामाण्येऽपि कथं नेय व्यवस्था धर्मशास्त्रमहानिबन्धेषु डामरतन्त्रादि तन्त्रग्रन्थेषु च प्राप्यते इति विभावयन्तु सुधियः इति तु न केनापि वक्तुम् पार्येत, यद् हरगौरीतन्त्रव्यवस्था तेषां दृष्टिपथमेव नायाता। धर्मसिन्धुकारमतेन सहास्माकमप्यत्रायमाशयो यत्—'एषु' विकल्पेषु यथाकुलाचारम् व्यवस्था। पाठोच्चारणं बिना स्वाहाकारस्याऽसम्भवात्, पाठे च सम्पुटमन्त्रस्यानिवार्योच्चारणत्वाच्च हवनस्य च विकल्पतया व्यवस्थापितत्वाच्च पूर्वं केवलं सम्पुट मन्त्रमुच्चार्यं सप्तशतीस्तोत्रमन्त्रेण स्वाहाकारं विदधतामन्ते पुनः स्वाहाकार विनैव सम्पुटमन्त्रमुच्चारयतां पूर्ववत् यत्किञ्चिन्न्यूनत्वपरिहारार्थमेकमधिकम् ससम्पुटं पाठं च कुर्वतान्तु सर्वमनवद्यमवेति दिक्।

प्रयोगमक्र एवात्र, संक्षेपेण मयोदितः,विशेषस्तु निबन्धेभ्यो, ज्ञायव्यस्तज्जिघृक्षुभिः ॥१॥

स्वर्गीय वि० भू० क० भू० आचार्य पं० परमानन्द शास्त्रिमिश्रकृतो

नवचण्डीशतचण्डीसहस्रचण्डीप्रयोगक्रमः समाप्तः ॥

॥ समाप्तः ॥

—: ❀ :—

※ अथ विन्ध्येश्वरी स्तोत्र ※

निशुम्भ शुम्भ गर्जनी प्रचण्ड मुण्ड खण्डनी । वने रणे प्रकाशिनी भजामि विन्ध्यवासिनी ॥१॥ त्रिशूल मुण्ड धारिणी धराविघात हारिणी । गृहे गृहे निवासिनी भजामि विन्ध्यवासिनी ॥२॥ दरिद्र दुःख हारिणी सुतां विभूति कारिणी । वियोग शोक हारिणी भजामि विन्ध्यवासिनी ॥३॥ लसत्सुलोल लोचनं लतासनं वरं प्रदं । कपाल शूलधारिणी भजामि विन्ध्यवासिनी ॥४॥ करौ मुदागदाधरा शिवा शिवः प्रदायिनी । वरा वरानना शुभा भजामि विन्ध्यवासिनी ॥५॥ ऋषीन्द्र जामिनी प्रदं त्रिधास्य रूप धारिणी । जले थले निवासिनी भजामि विन्ध्यवासिनी ॥६॥ विशिष्ट शिष्ट कारिणी विशाल रूप धारिणी । महोदरे विलासिनी भजामि विन्ध्यबासिनी ॥७॥ पुरंदरादि सेविता सुरारि वंश खण्डिता । विशुद्धि बुद्धि कारिणी भजामि विन्ध्यवासिनी ॥८॥

※ अम्बाजी का भजन ※

भरोसा हो भवानी का उसे षडयन्त्र का क्या डर । नियन्त्रित जीवन है जिसके सुरासुर और सारे नर ।टेर। बाल बाँका न कर सकता शत्रु पीछे पड़े चाहे । कालिका का वरद कर हो भक्त के जब कि मस्तक पर ॥१। गरल भी बन सके

अमृत, सिंह भी देख भग जाता । आर्त हो नाम अम्बा का पुकारे प्रेम से जब नर ।।२।। कमाई की न उसको कुछ जगत में हो सके चिन्ता । भवानी आप ही देती दास को फाड़कर छप्पर ।।३।। आर्त होकर पुकारो तो उसे वह शीघ्र सुन लेगी । कभी भी प्रार्थना निष्फल नहीं जाती है 'धरणी' पर ।।४।।

* भगवती का भरोसा *

भरोसो है भगवती थारो, आसरो है भगवती थारो । बाणी राखजे बात दासकी जाण तनुज प्यारो ।।टेक।। चरण कमल को लियो आसरो और न नेक सहारो । विपत्तिसिंधु में पड्यो दास यो आकर झट तारो ।१। जब २ संकट पड्यो आपको लीन्हों एक सहारो । आपत हरो सदावत् माता दया हृदय धारो ।२। दीनबन्धु यो विरुद आपको म्हारो वही सहारो । मैं हूँ पापी महानीच नर पर चाकर थारो ।।३।। चेत चेत चामुण्डा काली रिपु की जीभ निकारो । अनुचर कहँ जो व्यर्थ सतावे उन्हें जा संहारो ।।४।। अधिकारी लोगों का मन में न्याय दया विस्तारो । और सुदर्शन चक्र हाथ ले दुर्जन कूँ मारो ।।५।। सातशती में कह्या आप ही वे वे वचन विचारो । 'धरणी' सेवक को संकट दुर्गा झट टारो ।।६।।

मंगल की सेवा सुन मेरी देवी हाथ जोड़ तेरे द्वार खड़े। पान सुपारी ध्वजा नारियल ले ज्वाला तेरी भेंट करे ॥टेक॥ सुन जगदम्बा कर न बिलम्बा सन्तन को भण्डार भरे। सन्तन प्रतिपाली सदा खुशाली जय काली कल्याण करे। बुद्धि विधाता तू जग माता, मेरी कारज सिद्ध करो। चरण कमल का लिया आसरा, शरण तुम्हारी आन परो। जब २ भीर पड़ी भवतन पर, तब तब आप सहाय करो ॥१॥ बार २ तैं सब जग मोहो, तरुणी रूप अनूप धरे। माता होकर पुत्र खिलावे, भार्या होकर भोग करे। सन्तन सुखदाई सदा सहाई, सन्त खड़े जयकार करे ॥२॥ ब्रह्मा विष्णु महेश सहस फल लिये भेंट तेरे द्वार खड़े। अटल सिंहासन बैठी माता सिर सोने का छत्र धरे। सन्तन० ।३। बार शनिश्चर कुमकुम वरणों, जब लुंकड़ को हुकम करे। खड्ग खप्पर त्रिशूल हाथ लिये, रक्त बीज को भस्म करे। शुम्भ निशुम्भ पछाड़े माता, महिषासुर को पकड़ दले। सन्तन० ।४। आदि अवतार आपको वीरा, अपने जनको कष्ट हरे। कुपित होयकर दानव मारे, चण्ड मुण्ड सब चूर करे। जब तुम देखो दया रूप होय, पल में सकट

दूर करे । सन्तन०।५। सौम्य स्वभाव धर्यो मोरि माता, जन की अरज कबूल करे । सिंह पीठ पर चढ़ी भवानी, तीन भुवन में राज करे । दर्शन पावें मंगल गावें, सिद्ध साधु वर भेंट धरे ।सन्तन०।६। ब्रह्मा वेद पढ़ें तेरे द्वारे, शिव शंकर हरि ध्यान धरें । इन्द्र कृष्ण तेरी करें आरती, चमर कुवेर डुलाय रहे । जय जननी जय मात भवानी, अटल भुवन में राज्य करे । सन्तन० ।७।

* ज्वाला देवी की स्तुति *

वास ज्वाला अति विशाला भवन श्री भुवनेश्वरी । बढ़त उवारे नल विचारे मातु जै करुणेश्वरी । बाँधे ते दैत्य अपार, पायो न पार जगदीश्वरी । केहि विधि मनाऊँ दर्श पाऊँ आज मैं परमेश्वरी । ला ध्यान मेरा दास तेरा कलि दनुज कर घातरी । लखि नगर कोट सुस्थान होवे ज्ञान पूर्ण मातरी । मिले दान छोड़ गुमान मैं कल्याण के साधन करूँ । श्रवण सुनूँ तेरी कथा छूटे व्यथा गज दुःख हरूँ । सदा चलन में हो मगन मन ध्यान श्रीचरनन को धरूँ । दाता हो तुम सर्व-शक्ति की पर मुक्ति की विनती करूँ । बात यह रह जाय दुःख नश जाय तेरे दास की । दरबार में आदर सदा "बाँके" की अनुपम चाल की ।

द्वार पै पुकारो मैं अनहद बजाय बाजो, दर्शन देउ श्रीमात अर्जी एक मेरी है।
भक्तनके तारनको निवास भूमि माँहि कीयो, पंडन दुःख खंडनको करी नहिं देरीहै।
कहाँ लौं बखानूँ मातु भक्त धाँधू उवार दीने, मेरी वेर श्रीमात भई क्यों अबेरी है।
'बाँके' पै बने न मात सेवा कोई सेवा बिन तारो श्री दुर्गेमात मेरी है।

बटुक भैरव की आरती

ॐ जय भैरव देवा, प्रभु जय भैरव देवा। जय काला अरु गोरा, कृत देवी सेवा।
तुम्हीं आप दुद्धारक, दुःख-सिंधुत्तारक। भक्तों के भय हारक, भीषण वपु धारक।
वाहन श्वान विराजत, कर त्रिशूलधारी। महिमा अमित तुम्हारी, जय२ भयहारी।
तब बिन देवी पूजा, सफल नहीं होवे। चतुर्वतिका दीपक, दर्शन दुःख खोवे।
तैल वटक दधि मिश्रित, मास बली तेरी। कृपा करो जय भैरव, करिये नहिं देरी।
पांव घूँघरे बाजत, डमरू डमकावत। बटुकनाथ बन बालक, जन मन हरषावत।
बटुकनाथ की आरति, जो कोई गावे। कह 'धरणीधर' वह नर, वांछित फल पावे।